मनोविकार : सर्वनाशी महा-शत्रु

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

२००६ मूल्य : ५-०० रुपया

भूमिका

आप जान-बूझकर अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देना चाहते हैं जो असफलता आ चुकी है, जो हानि हो चुकी है, जो हाथ से चला गया है उसके लिए रोने-कलपने अथवा हाय-हाय करने से भूतकाल वर्तमान में आकर आपको सांत्वना नहीं दे सकता। इसके लिए तो आपको भविष्य की संभावनाओं की ओर ही देखना होगा। उसके लिये आत्म-विश्वास के साथ पुरुषार्थ करना होगा। अन्यथा मनोविकारों के सर्वनाशी महाशत्रु आपकी सुख-शांति सब छीन लेंगे।

जब संसार में सभी साथी मनुष्य का साथ छोड़ दें, पराजय और पीड़ाओं के दंश मनुष्य को घायल कर दें, पैरों के नीचे से सभी आधार खिसक जायें, जीवन के अंधकारयुक्त बीहड़ पथ पर यात्री अकेला पड़ जाए तो भी क्या वह जीवित रह सकता है ? कुछ कर सकता है ? पथ पर आगे बढ़ सकता है ? अवश्यमेव। यदि वह स्वयं अपने साथ है तो कोई शक्ति उसकी गति को नहीं रोक सकती। कोई भी अभाव उसकी जीवन यात्रा को अपूर्ण नहीं रख सकता। मनुष्य का अपना आत्म-विश्वास ही अकेला इतना शक्तिशाली साधन है जो उसे मंजिल पर पहुँचा सकता है। विजय की सिद्धि प्राप्त करा सकता है।

प्रकाशक :

गायत्री तपोभूमि

मथुरा

मानसिक अवसाद का घातक प्रभाव

शरीर पर मन का नियंत्रण है—इस तथ्य को हम प्रतिक्षण देखते हैं। मस्तिष्क की इच्छा और प्रेरणा के अनुरूप प्रत्येक अंग कार्य करता है। प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले क्रिया-कलाप हमारी मानसिक प्रेरणाओं से ही प्रेरित होते हैं। जो कार्य स्वसंचालित दिखाई पड़ते हैं, वे भी वस्तुतः हमारे अचेतन मन की क्षमता एवं प्रवीणता से संचालित होते हैं। श्वास-प्रश्वास, रक्ताभिषरण, आकुंचन-प्रकुंचन, निद्रा-जागृति, पाचन, मल-विसर्जन जैसी स्वयंमेव चलती प्रतीत होने वाली क्रियाएँ भी अचेतन मन के द्वारा गतिशील रहती हैं। शरीर को ऐसा घोड़ा मानना चाहिए जिसकी प्रत्यक्ष और परोक्ष नियंत्रण सत्ता पूरी तरह मस्तिष्क के हाथ में है।

मस्तिष्क को स्वस्थ, संतुलित और हल्का-फुल्का रखे बिना कोई व्यक्ति अपने शरीर को निरोग एवं परिपुष्ट रख सकने में सफल नहीं हो सकता। मन पर उद्वेगों का तनाव छाया रहेगा तो शरीर का आहार-विहार ठीक रहने पर भी रोगों के आक्रमण होने लगेंगे और बढ़ती हुई दुर्बलता अकाल मृत्यु की ओर तेजी से घसीटती ले चलेगी। इसके विपरीत हँसते-हँसाते शांत संतुलित मनःस्थिति में जीवनयापन हो रहा तो शरीरगत असुविधाओं के रखते हुए भी स्वास्थ्य अक्षुण्ण बना रहेगा।

शरीर की देखभाल रखने और उसे स्वस्थ, सुंदर रखने के लिए खुराक साज-सज्जा, सुविधा आदि का जितना ध्यान रखा जाता है, उतना ही ध्यान मस्तिष्क को उद्वेगरहित, संतुष्ट एवं प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया जाय तो स्वास्थ्य रक्षा की तीन चौथाई समस्या हल हो सकती है।

परिस्थितिवश उद्विग्न रहने की बात अक्सर कही जाती है, पर वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। मानसिक कुसंस्कार के कारण चिंतन की सही रीति-नीति से अपरिचित होने के कारण ही तरह-तरह के विक्षोभ हमें घेरते हैं। संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो अनेकों समस्याओं और कठिनाइयों से घिरे रहने पर भी अपनी मनःस्थिति को विक्षुब्ध नहीं होने देते और हँसते-हँसाते सामने प्रस्तुत उलझनों को सुलझाने के लिए धैर्य और साहसपूर्वक जुटे रहते हैं। इसके विपरीत ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो राई के बराबर कठिनाई को पहाड़ बराबर मान लेते हैं और तिल को ताड़ के रूप में देखने की मानसिक दुर्बलता के कारण निरंतर उद्विग्न बने रहते हैं।

चिंता, निराशा, खीज, झुँझल, आवेश, चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या, द्वेष, आशंका जैसी विक्षोभकारी प्रवृत्तियाँ अकारण ही अपनाये रहने वालों की कमी नहीं। ऐसे लोग अपनी इस मानसिक रुग्णता के कारण शरीर को भी रोगी बना लेते हैं और असमय में ही अकाल मृत्यु के मुँह में जा घुसते हैं। धैर्य, साहस, विवेक और संतुलन के आधार पर हल्का-फुल्का जीवन सहज ही जिया जा सकता है और अपेक्षाकृत अधिक सरलतापूर्वक कठिनाइयों का समाधान किया जा सकता है। स्वास्थ्य संरक्षण की दृष्टि से तो मानसिक संतुलन की स्थिरता और प्रसन्न रहने की आदत नितांत आवश्यक है।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के संरक्षण में चलने वाले ईथलपर्सी जेरांटालाजी सैंटर के प्राध्यापक प्रो. जोसफ क्रचविक ने जीवन और मृत्यु संबंधी अपने लंबे शोधकार्य का निष्कर्ष यह निकाला है कि औसत आदमी थोड़ी भलमनसाहत से चले और सावधानी बरते तो आसानी से सौ वर्ष जीवित रहता है। अधिकांश लोग समय से पहले अपनी ही गल्तियों के कारण बेमौत मरते हैं।

जल्दी मरने के लिए विवश करने वाले उन्होंने प्रमुख कारण तीन गिनाये हैं—(१) अखाद्य आहार की अनावश्यक मात्रा

में खाते रहना। (२) शारीरिक श्रम से जी चुराना और दिनचर्या अनियमित रखना। (३) मस्तिष्क पर चिंताओं का तनाव लादे फिरना।

डॉ० डब्ल्यू० सी० डालवीरिस के मेयोक्लीनिक में पंद्रह हजार उदर-रोगियों का न केवल उपचार वरन् गंभीर अध्ययन भी किया गया। इस शोध का निष्कर्ष यह प्रकाशित किया गया कि ७० प्रतिशत रोगियों के पीछे यह व्यथा इसलिए पड़ी कि वे परिस्थितियों के साथ अपना तालमेल न बिठा सके फलतः मानसिक उद्विग्नता ने उनके पेट को विषाक्त बनाकर रख दिया।

उद्योग क्षेत्रों के अमेरिकी डॉक्टरों के वार्षिक सम्मेलन में एक अनुभवी डॉ० हेराल्डसी० ऐर्जनीने अपने विश्लेषण का सार प्रस्तुत करते हुए कहा—व्यवसायियों में से ४४ प्रतिशत रक्तचाप और उदर-रोगों से पीड़ित पाये गये हैं। इसका कारण उनकी तनावपूर्ण मनःस्थिति होती है। उन्होंने यह भी कहा प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ वहन करने वालों में से आधे आदमी ढलती आयु तक पहुँचने से पहले ही स्नायु-संस्थान के रोगी बन जाते हैं। इसका कारण उनका निरंतर चिंतन और उद्विग्न रहना ही होता है।

अब संस्कार के मूर्धन्य शरीर विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अस्वस्था की जड़ें शारीरिक पदार्थों एवं अवयवों में ढूँढ़ते रहने से काम न चलेगा। अब मस्तिष्कीय स्थिति को निदान एवं उपचार में प्रमुखता दी जानी चाहिए, क्योंकि आधी से अधिक रुग्णता पेट से, रक्त से नहीं वरन् मस्तिष्क से उत्पन्न होती है। इस सन्दर्भ में 'साइको सोमेटिक' नामक एक स्वतंत्र शास्त्र को विकसित किया जा रहा है।

विख्यात चिकित्सक ओ० एफ० ग्रोवर बारह वर्ष तक उदर व्रण से पीड़ित रहे। बहुत उपचार करने के पश्चात् भी जब निराशा हाथ लगी तो वे एक मनोविज्ञानवेत्ता के पास गये। उसने बताया कि यदि आप चिंतामुक्त हँसता-हँसाता जीवन जीने लगें तो

प्रो० एनाय हार्वन का कथन है कि—जितना ध्यान शारीरिक चिकित्सा पर दिया गया है, उतना ही यदि मानसिक अस्वस्थता के निवारण पर दिया जाता तो लोग अधिक निरोग और सुखी रह सकते थे। मानसिक अस्वस्थता घेरे रहने पर शरीर संरक्षण के लिए किये गये प्रयास कुछ अधिक सफल नहीं हो सकते।

निराशा का अभिशाप—परिताप

प्रतिदिन रात आती है। चारों ओर अंधकार छा जाता है। मानव जीवन के सारे काम बन्द हो जाते हैं। रात और रात का अंधकार किसी को अच्छा नहीं लगता। तब भी सभी लोग उसे सहन करते हैं—काटते हैं। रात आने पर न तो कोई घबराता है, न हाय-हाय करता है और न रोता-चिल्लाता है। क्यों ? इसलिए कि काली रात के पीछे एक प्रकाशमान दिन तैयार रहता है। सभी को विश्वास रहता है कि रात बीतेगी और शीघ्र ही प्रभात आयेगा। चिंता और दुःख की बात तो तब हो, जब रात का अंत संभव न हो और प्रभात की संभावना न रहे।

निराशा भी एक प्रकार का काला अंधकार होता है किन्तु रात की तरह इसका अस्तित्व भी स्थायी नहीं होता। शीघ्र ही इसका समाप्त हो जाना निश्चित होता है। इसका अस्तित्व कुछ समय के लिए घिर आए काले अंधेरे बादलों की तरह ही होता है, जो शीघ्र ही अपने आप कट जाते हैं। निराशा मिटती है और उसके साथ ही अह्लादकारी आशा अपना नवप्रकाश लेकर आती है—यह प्रकृति का एक अटल नियम है।

तब न जाने लोग निराशा का वातावरण आने पर बेतरह घबरा क्यों उठते है ? शीघ्र ही साहस हार जाते है और जीवन से ऊबने लगते हैं। एक ही रट लगाए रहते हैं—मैं जीवन से ऊब गया हूँ, मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। संसार मेरे लिए भय और अंधकार की जगह बन गया है। मेरे चारों ओर

मुसीबत ही मुसीबत घिरी खड़ी है। मैं बड़ा दुःखी हूँ, मेरा जैसा दुःख संसार में किसी पर न आया होगा।

निराशा से इस प्रकार बेतरह घबरा उठने वाले लोगों को देखकर मानना पड़ता है कि किसी विद्वान् की कही हुई यह बात ठीक है कि निराशा को अपने ऊपर छाने देना एक प्रकार की कायरता है। जो आदमी कायर और कमजोर होता है, वह जरा सी प्रतिकूलता आने पर घबराकर निराश हो जाता है। उसमें कठिनाइयों का सामना करने का साहस नहीं होता और शीघ्र ही निराशा का शिकार बनकर संसार और जीवन को निस्सार और बेकार मान बैठता है।

ऐसे कायर व्यक्ति न तो मानव-जीवन का कोई लाभ उठा सकते हैं और न कोई उल्लेखनीय काम ही कर सकते हैं। निराशा की परिस्थितियाँ आ जाना कोई असंभाव्य बात नहीं है। यह संसार सफलता, असफलताओं की क्रीड़ास्थली है।

संसार के सारे व्यक्ति समान होते हैं, सबमें एक जैसी शक्ति विद्यमान रहती है। सभी को संसार की विषमताओं से टक्कर लेते हुए चलना पड़ता है तथापि सारे लोग महान् व्यक्ति नहीं बन जाते। इसका रहस्य यही है कि—सामान्यतः लोग संसार की विषमताओं और कठिनाइयों से हारकर हताश हो बैठते हैं। उनके जीवन का सारा उत्साह नष्ट हो जाता है और वे असफलताओं से निराश होकर मैदान छोड़ जाते हैं किन्तु जो आदमी हर परिस्थिति का साहस के साथ सामना करते हैं। दुःख-तकलीफ और विफलताओं से निराश नहीं होते, अपनी पूरी शक्ति और उत्साह से संघर्ष करते रहते हैं, वे अंत में विजयी होते हैं और इतिहास में अपने को अमर कर जाते हैं। निराशा, पराजय तथा पलायन का भाव है। जो भी इस दुर्भाव को अपने जीवन में स्थान दे देता है—वह निश्चय ही बाजी हार जाता है। किसी भी स्थिति अथवा परिस्थिति में निराशा को पास न आने देना चाहिए। यह जीवन प्रगति की बड़ी भारी शत्रु है।

निराशा छोड़कर उठिये और आगे बढ़िए

अनेक लोग एक छोटी-सी अप्रिय घटना या नगण्य-सी हानि से व्यग्र हो उठते हैं और यहाँ तक व्याकुल हो उठते हैं कि जीवन का अंत ही कर देने की सोचने लगते हैं और यदि ऐसा नहीं भी करते तो भविष्य की सारी आकांक्षाओं को छोड़कर एक हारे हुए सिपाही की भाँति हथियार डालकर अपने से ही विरक्त होकर निकम्मी जिंदगी अपना लेते हैं। यह भी एक आत्महत्या का ही रूप है।

इस प्रकार की आत्महिंसा के मूल में अप्रिय घटना, असफलता अथवा हानि का हाथ नहीं होता बल्कि इसका कारण होती है—मनुष्य की अपनी मानसिक दुर्बलता। हानियाँ अथवा अप्रियताएँ तो आकर चली जाती हैं। वे जीवन में ठहरती तो नहीं किंतु दुर्बल मन व्यक्ति उनकी छाया पकड़कर बैठ जाता है और अपनी चिंता का सहारा उन्हें वर्धमान किये रहता है। घटनाओं की कटुताओं एवं अप्रियताओं की कल्पना भर करके और हठात् उनकी अनुभूति जगाकर अपने को सताया करता है। धीरे-धीरे वह अपनी इस काल्पनिक कटुता का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि वह उसके स्वभाव की एक अंग बन जाती है और मनुष्य एक स्थायी निराशा का शिकार बनकर रह जाता है। इस सब अस्वाभाविक दुर्दशा का कारण केवल उसकी मानसिक दुर्बलता ही होती है।

जहाँ अनेक व्यक्ति अप्रियता अथवा प्रतिकूलता से इस प्रकार की शोचनीय अवस्था में पहुँचकर जिंदगी चौपट कर लेते हैं, वहाँ अनेक लोग अप्रियताओं एवं प्रतिकूलताओं से अधिक सक्रिय, साहसी एवं उद्योगी हो उठते हैं। वे पीछे हटने के बजाय आगे बढ़ते हैं। हथियार डालने के स्थान पर उन्हे आगामी संघर्ष के लिए सँजोते सँभालते हैं। वे संसार को आँख खोलकर देखते हैं और अपने से कहते हैं—"इस दुनियाँ में ऐसा कौन है जो जीवन में सदा सफल ही होता रहा है, जिसके सम्मुख अभी

अप्रियताएँ अथवा प्रतिकूलताएँ आई ही न हों। किंतु जितने लोग निराश, हताश, निरुत्साह अथवा हेय-हिम्मत होकर बैठे रहते हैं। यदि ऐसा रहा होता तो इस संसार में न तो कोई उद्योग करता दिखाई देता और न हँसता-बोलता। सारा जन-समुदाय निराशा के अंधकार से भरा केवल उदास और आँसू बहाता ही दिखाई देता है।" वे खोज-खोजकर कर्मवीरों के उदाहरण अपने सामने रखते हैं ऐसे लोगों पर अपनी दृष्टि डालते हैं, जो जीवन में अनेक बार गिरकर उठे होते हैं। वे असफलता की कटु कल्पनाएँ नहीं भविष्य की सफलताओं की आराधना किया करते हैं। उनके इस मनोहर दृष्टिकोण का कारण उनका मानसिक बल तथा आत्म-विश्वास ही होता है।

कोई भी मनस्वी व्यक्ति कभी निराश नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि निराशा एक गहन अंधकार है, जो मनुष्य को इस हद तक अंधा बना देती है कि आगे का मार्ग, भविष्य की संभावनाएँ, तो दूर उसे अपने हाथ-पैर तक नहीं दिखाई देते। निराशा एक डरावनी मनःस्थिति है। चिंता को जन्म देने वाली पिशाचिनी है। शंका, आशंका और विवशता के बंधन निराशा से ही उत्पन्न होते हैं। निराशा को आगे रखने से मनुष्य के हृदय में निवास करने वाली महान शक्तियाँ सामने नहीं आ पातीं। निराशा अपने सहायकों और यहाँ तक सारे संसार के प्रति अविश्वास पैदा कर देती है। निराशा का साथ मनुष्य को सब ओर से अनाथ करके हेय और हीन वृत्ति बना देता है। इस प्रकार की विवेक बुद्धि रखने वाले मनस्वी लोग निराशा को पाप की तरह घृणित तथा अग्राह्य समझकर पास नहीं फटकने देते।

वे सदैव आशा की आराधना किया करते हैं। उद्योगों का सहारा लिया करते हैं। उन्हें पता रहता है कि आशा की आलोकमयी शीतल किरणों में संजीवनी शक्ति रहा करती है। आशा का आलोक मानसिक अंधकार को दूर करके, व्याकुल एवं अशांत चित्त को संयत करके संभावनाएँ प्रदान किया करता है। आशा की एक नन्हीं-सी किरण निराशा के घोरतम अंधेरे को

बढ़ते रहेंगे। कोई इक्के-दुक्के ही मानस रोगी और पुरुषार्थहीन व्यक्ति असफलताओं से हारकर मैदान छोड़ते और कायरता का कलंक लेते रहेंगे।

कोई भी मनुष्य संसार में कुछ भी लेकर पैदा नहीं होता है। जन्म के समय उसकी बंद मुट्ठियों में कुछ भी नहीं होता। वह केवल अपने शिशु हृदय में एक अनजान आशा और अपरिचित आत्म-विश्वास को लिये हुए ही पैदा होता है। जन्म के बाद वह धीरे-धीरे संकटों का सामना करता हुआ बढ़ता है। बड़ा होकर पढ़ता-लिखता और संसार समर में उतरता है। जन्म के समय कुछ भी न लाया हुआ मनुष्य अपने उद्योग एवं आशा के बल पर बड़ी से बड़ी विभूतियाँ प्राप्त कर लेता है और अंत में उन्हें यहीं छोड़कर चला जाता है। वह न कुछ लाता है और न ले जाता है। उसका अपना सच्चा धन पुरुषार्थ, उद्योग एवं उद्यम ही होता है जिसका प्रदर्शन कर वह श्रेय अथवा निकम्मा होकर जीवन की शक्तियों पर कलंक लेकर चला जाता है।

असफलताओं तथा हानियों से निराश होकर निकम्मे हो जाने वालों को सोचना चाहिए कि जब वे संसार में आये थे, तब उनके पास कुछ भी नहीं था। उन्होंने अपने हाथ, पैरों के बल पर सब कुछ पा लिया और यदि आज वह संयोग अथवा पट परिवर्तन से उनके पास, ले चला गया तो इसमें निराश होने की क्या आवश्यकता ? जब उनके पास कुछ नहीं था, तब उन्होंने सब कुछ पा लिया और आज जब उनके पास बहुत कुछ शेष है तब वे अपने परखे हुए उद्योग के बल पर फिर सब कुछ न पा लेंगे ऐसी कोई संभावना नहीं है। बस इसके लिए आशा की ज्योति जगाने तथा अपने में विश्वास करने मात्र की आवश्यकता है। उठिए और आत्म-विश्वास के साथ अपने उद्योग में लगिए आप अवश्य सफल एवं सौभाग्यशाली बनेंगे।

यदि कोई संकट आप पर आ गया है, आपको उससे छुटकारा पाना है वह आपसे आप तो चला नहीं जाएगा। उसे दूर करने के लिए तो उद्योग करना ही होगा। यदि आप

निरुद्योगी होकर बैठे रहते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि आप अपने संकट को दूर ही नहीं करना चाहते। आप उद्योग की कठिनाई की अपेक्षा संकट का त्रास अधिक पसंद करते हैं। आप जान-बूझकर अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देना चाहते हैं जो असफलता आ चुकी है, जो हानि हो चुकी है, जो हाथ से चला गया है उसके लिए रोने-कलपने अथवा हाय-हाय करने से भूतकाल वर्तमान में आकर आपको सांत्वना नहीं दे सकता। इसके लिए तो आपको भविष्य की संभावनाओं की ओर ही देखना होगा। उसके लिये आत्म-विश्वास के साथ पुरुषार्थ करना होगा। अन्यथा मनोविकारों के सर्वनाशी महाशत्रु आपकी सुख-शांति सब छीन लेंगे।

● ●

आत्म विश्वास जागृत रहे

जब संसार में सभी साथी मनुष्य का साथ छोड़ दें, पराजय और पीड़ाओं के दंश मनुष्य को घायल कर दें, पैरों के नीचे से सभी आधार खिसक जायें, जीवन के अंधकारयुक्त बीहड़ पथ पर यात्री अकेला पड़ जाए तो भी क्या वह जीवित रह सकता है ? कुछ कर सकता है ? पथ पर आगे बढ़ सकता है ? अवश्यमेव। यदि वह स्वयं अपने साथ है तो कोई शक्ति उसकी गति को नहीं रोक सकती। कोई भी अभाव उसकी जीवन यात्रा को अपूर्ण नहीं रख सकता। मनुष्य का अपना आत्म-विश्वास ही अकेला इतना शक्तिशाली साधन है जो उसे मंजिल पर पहुँचा सकता है। विजय की सिद्धि प्राप्त करा सकता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र का 'अकेला चल' शीर्षक वाला गीत आपने पढ़ा या सुना होगा। उस गीत के भाव हैं—"यदि कोई तुमसे,

कुछ न कहे, तुझे भाग्यहीन समझकर सब तुझसे मुँह फेर लें और तुझसे डरें—तो भी तू अपने खुले हृदय से अपना मुँह खोलकर अपनी बात कहता चल।"

"अगर तुझसे सब विमुख हो जायें यदि गहन पथ प्रस्थान के समय कोई तेरी ओर फिरकर भी न देखे, तब पथ के काँटों को अपने लहू-लुहान पैरों से चलता हुआ अकेला चल।

यदि प्रकाश न हो, झंझावत और मूसलाधार वर्षा की अँधेरी रात में अपने घर के दरवाजे भी तेरे लिए लोगों ने बंद कर दिए हों तब उस वज्रानल से अपने वक्ष के पिंजर को जलाकर उस प्रकाश में अकेला ही चलता रह।

निःसंदेह हर परिस्थिति में मनुष्य का एक मात्र साथी उसका अपना आपा ही है। स्वामी विवेकानद के शब्दों में—"आत्म विश्वास सरीखा दूसरा मित्र नहीं, आत्म-विश्वास ही भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।" सचमुच आत्म-विश्वास के कारण दुर्गम पथ भी सुगम बन जाता है, बाधाएँ भी मंजिल पर पहुँचाने वाली सीढ़ियाँ बन जाती हैं। इमर्सन ने कहा है—"आत्म विश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है।"

आत्म-विश्वास मनुष्य को तुच्छता से महानता की ओर अग्रसर करता है। सामान्य से असामान्य बना देता है। स्वेट मार्डन ने कहा है—"आत्म-विश्वास की मात्रा हममें जितनी अधिक होगी उतना ही हमारा संबंध अनंत-जीवन और अनंत शक्ति के साथ गहरा होता जाएगा। जब चारों ओर विपत्तियों के काले बादल मँडराते हों, जब सागर में कहीं भी जीवननैया को खड़ा करने का किनारा न मिल रहा हो, भयंकर तूफान उठ रहा हो नाव अब डूबे तब डूबे की स्थिति में हो तो कैसे उद्धार हो सकता है ? आत्म-विश्वास ही ऐसी स्थिति में मनुष्य को बचा सकता है। उसी तथ्य को व्यक्त करते हुए कालबिक ने लिखा है—आत्म-विश्वास में वह शक्ति है, जो सहस्रों विपत्तियों का सामना कर उन्हें विजय प्राप्त करा सकती है।"

आत्म-विश्वास—परमात्मा पर विश्वास करना है, जिसकी शक्ति अजेय है अनंत है। जो अपने आप पर विश्वास करता है, अपनी बागडोर उसके हाथों में सौंप देता है, उस पर संसार विश्वास करता है। संसार भर में नेतृत्व, शासन, पथ-प्रदर्शन वे ही करते हैं। जिन्हें अपने आप पर महान विश्वास होता है। अपने ऊपर अपार विश्वास रखकर ही वे संसार को प्रभावित करते हैं। आत्मविश्वास के बल पर एक मनुष्य अफ्रीका के जंगलों में से भी जंगली शेर को पकड़ लाता है। हिंसक जंतुओं के बीच खड़ा होकर उन्हें नचाता है लेकिन आत्म-विश्वासहीन व्यक्ति शहर के बीच एक कुत्ते से भी डर जाता है। बंदर भी उसे भयभीत कर देता है। वस्तुत: सभी मनुष्यों का शरीर एक-सा ही होता है किन्तु जिस व्यक्ति के चेहरे से, आँखों से आत्म-विश्वास का अपार तेज प्रवाहित होता है, जिसके हृदय में आत्म-विश्वास का संबंध है उसके समक्ष हिंसक जन्तु भी पालतू-सा बनकर दुम हिलाने लगता है। उसका यह तेज ही दूसरों पर जादू का-सा असर डालता है।

कोलंबस जब पृथ्वी की परिक्रमा करने चला था, उसके दुर्बल हृदय साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया, उसे बुरा-भला कहकर वापिस लौट जाने की सलाह दी, लेकिन उसका एक अजेय आत्म-विश्वास नहीं टूटा और उसने नई दुनियाँ की खोज की, पृथ्वी को गोल सिद्ध किया। नैपोलियन की सेना रुक गयी आल्पस पर्वत को देखकर। उसके सेनानियों को कोई मार्ग नहीं मिला लेकिन यह दुर्भेद्यता नैपोलियन के अथाह आत्म-विश्वास के लिए बाधा नहीं बन सकी। उसने कहा है—"कुछ भी हो हमें आल्पस पर होकर मार्ग निकालना है" और सचमुच उस विशाल पहाड़ को काट-छाँट कर मार्ग बना लिया गया।

भगवान् राम अपने अजेय आत्म-विश्वास के बल पर ही वनवास की विपत्तियों को सह सके, रावण से लोहा ले सके। महात्मा गाँधी के अथाह आत्म-विश्वास ने विशाल ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंका। इसके विपरीत ऐसे भी लोग हैं जो अपने

आत्म-विश्वासी के इशारे पर नाचती हैं और काम करती हैं। जो अपनी शक्तियों का स्वामी है, नियंत्रणकर्त्ता है, उसे संसार में कोई भी कमी नहीं रहती। सिद्धियाँ-सफलताएँ स्वयं आकर उसके दरवाजे को खटखटाती हैं।

निर्बल, असहाय, दीन, दुःखी, दरिद्री कौन ? जिसका आत्म-विश्वास मर चुका है। भाग्यहीन कौन ? जिसका अपने विश्वास ने साथ छोड़ दिया है। वस्तुतः आत्म-विश्वास जीवन नैया का एक शक्तिशाली समर्थ मल्लाह है जो डूबती नाव को पतवार के सहारे ही नहीं वरन् अपने हाथों से उठाकर प्रबल लहरों से पार कर देता है। आत्म-विश्वासहीन व्यक्ति जीवित होता हुआ भी मृत तुल्य है, क्योंकि उत्साह, तेज, शक्ति, साहस, स्फूर्ति, आशा, उमंग के साथ जीना ही जीवन है और ये सब वहीं रहते हैं, जहाँ आत्म-विश्वास होता है।

अतः जीवन में सफल होता है, विजयी बनकर जीवन बिताना है, संसार में ढकेले जाने वाले नहीं वरन् संसार को गति देने वाले बनकर रहना है, जीवन के उतार-चढ़ाव, हार-जीत के द्वंदों में, कठिनाई में, उलझनों में झंझाओं में स्थिर रहना है, संसार पर अपनी छाप छोड़कर जाना है, आशा और उमंग का जीवन बिताना है, तो अपने आत्म-विश्वास को जगाइए उसे विकसित कीजिए। स्मरण रखिये आत्म-विश्वासी के लिए ही संसार स्थान देता है। जो अपने आपको महत्त्वपूर्ण नहीं मानता उसे संसार भी ढकेल कर एक ओर कर देता है।

आत्मविश्वास एक वास्तविक बल

विश्वास मानव जीवन की दृढ़ पतवार है, जो उसे लाखों विपरीतताओं, उलझनों में भी गतिशील और सुस्थिर बनाए रखती है। विश्वास की डोर से बँधी हुई जीवन की नैया डगमगा नहीं सकती। अनेकों उलझनें, समस्याएँ, आँधियाँ तूफान भी उस व्यक्ति को अपने ध्येय-पथ से विचलित नहीं कर सकते जो अपने आप में अटूट विश्वास लिए चल रहा है। जीवन में प्रकाश देने वाले

सभी दीपक बुझ जाएँ किन्तु मनुष्य के अंतर में विश्वास की ज्योति जलती रहे तो वह घोर अंधकार में भी अपना पथ स्वयं ढूँढ़ लेगा। आत्म-विश्वास की ज्योति के समक्ष संसार के सभी अंधकार तिरोहित हो जाते हैं।

संसार में जितने भी महान् कार्य हुए वे सब विश्वास की ही कृति हैं। महात्मा गाँधी के प्रबल विश्वास ने ही देश की आजादी का स्वप्न साकार किया। भगवान् तिलक ने कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे।" उनका यह दृढ़ विश्वास कालांतर में मूर्त हुआ। लिंकन ने अपनी डायरी के पन्नों पर लिखा, साथ ही लोगों से कहा—मैंने अपने भगवान् को यह वचन दिया है कि दासों की मुक्ति के कार्य को मैं अवश्य पूरा करूँगा। अनेकों विरोधों के बावजूद भी लिंकन ने वह महान् कार्य संपन्न किया। कोलंबस को विशाल सागर के पार किसी कूल का विश्वास था। उसने अपनी साहसिक यात्रा करके अंततः अमेरिका की खोज कर ही ली।

विश्वास सफल जीवन का मूल मंत्र है। टालस्टाय ने लिखा है "विश्वास जीवन की शक्ति है।" शेक्सपीयर ने कहा था 'विश्वास क्या नहीं कर सकता ? विश्वास हमें अथाह सागर में भी मार्ग ढूँढ़ निकालता है। वह हमें गगनचुंबी पहाड़ों को लाँघने की शक्ति और प्रेरणा देता है।" विश्वास जीवन के समस्त वरदानों का आधार है। स्वेट मार्डेन ने लिखा है—विश्वास ही जीवन के उस मार्ग की खोज करता है जो हमें मंजिल तक पहुँचा सके।" महात्मा गाँधी ने कहा है—"विश्वास हमारी जीवन नैया को तूफानी सागर में भी खेता है। विश्वास पर्वतों को डिगा देता है। विशाल सागर को लाँघ सकता है। विश्वास कोई कमल पुष्प नहीं जो साधारण वायु के झौंके से ही गिर जाय। वह हिमालय की तरह अडिग रहता है।" सीता की खोज में गये वानर-भालू समुद्र तट पर हारकर बैठ गये। कौन इसके पार जाकर सीता का पता लगावे ? स्वयं हनुमान भी इसी चिंता में थे किंतु जामवंत ने उनके आत्म-विश्वास को जाग्रत करते हुए

कहा—"हनुमान ! तुम इस समुद्र को लाँघ सकते हो" और आत्म-विश्वास के जाग्रत होते ही हनुमान उस विशाल सागर को खेल की तरह पार कर गये। संसार के समरांगण में, जीवन के संघर्ष में वही व्यक्ति स्थिर रह सकता है जिसमें अदम्य विश्वास है।

जहाँ विश्वास वहाँ जीवन के समस्त अभाव, अभिशाप, दीनता, दारिद्रय, गरीबी, निष्प्रभव हो जाते हैं। ये जीवन के विकास क्रम में बाधक नहीं बनते। संसार के अधिकांश महापुरुषों का जीवन इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है जिन्हें बढ़ने के लिए तनिक भी सहारा नहीं था, उन्होंने अपने आत्मबल के सहारे जीवन की महान् सफलताएँ अर्जित कीं। अनेकों व्यक्ति असाधारण बन गये अपने विश्वास के आधार पर।

किसी भी क्षेत्र में सफलता अर्जित करने के लिए आगे बढ़ने के लिए विश्वास का होना आवश्यक है। किसी भी ध्येय की पूर्ति के पीछे विश्वास की सत्ता नहीं होगी तो वह अपने प्रारम्भ काल में ही अस्त हो जाएगा। विश्वास के अभाव में मनुष्य जीवन शुष्क नीरस, निर्जीव-सा बन जाता है। जड़ता अपने जाल में जकड़ लेती है। विश्वास के अभाव में राज-पथ पर भी मनुष्य एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता।

विश्वास कहीं अन्यत्र ढूँढ़ी जाने वाली वस्तु या किसी की कृपा का वरदान नहीं। यह हमारे अंतर में ही विराजमान सनातन सत्य है। आत्म-चेतना, अजर-अक्षर, सर्वशक्ति संपन्न, दिव्य स्वरूप ही हमारे विश्वास का आधार हो सकता है। इस तरह आत्म देव का परिचय प्राप्त कर उन्हीं के हाथों जीवन की पतवार सौंप देना अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर भरोसा रखकर निर्द्वंद्व हो जीवन रण में अपना कर्तव्य पालन करते रहना ही विश्वास का अवलंबन लेना है। मनुष्य अपने आप में अक्षय शक्ति और निधियों का स्वामी है। मनुष्य के अंतर में शक्ति समृद्धि का अजस्र स्रोत है। इसका परिचय होने पर दृढ़ विश्वास का अभ्युदय होता है।

तथाकथित गरीबी, दुर्भाग्य हमें परास्त नहीं कर सकेंगे। कठिनाइयाँ, उलझनें, समस्याएँ उसी तरह भाग खड़ी होंगी जैसे प्रकाश के सम्मुख अंधकार।

वेद भगवान ने कहा है—"हे मनुष्य ! यह जीवन अमृत की लड़ी है। तेरे प्राण, तेरा जीवन नित्य नयी आभा लिए आ रहा है। हे मनुष्य ! प्रेरणा का केंद्र है, तू प्रकाश का धारण करने वाला है। तू प्रकाश है ! तू प्रकाश है !! तू प्रकाश !!! तू अगर ज्योति है ! तू दिव्य ज्योति है ! यदि हमें जीवन के महान लाभों से संपन्न होना है तो आत्म-विश्वास का संबल लेना ही पड़ेगा इसके सिवा कोई चारा नहीं। आत्म-विश्वास के अभाव में मनुष्य का शरीर मन ही साथ नहीं देता न दुनियाँ वाले ही सहायता कर सकते हैं।

"अगर मुझको अमुक सुविधाएँ मिलतीं तो मैं ऐसा करता" इस प्रकार की कोई कल्पनाएँ गढ़ने वाले आत्म-प्रवंचना किया करते हैं। भाग्य दूसरों के सहारे विकसित नहीं होता। आपका भार ढोने के लिए इस संसार में कोई दूसरा तैयार न होगा। हम यह यात्रा अपने पैरों से ही पूरी कर सकते हैं। दूसरे का अवलंबन लेंगे तो हमारा जीवन कठिन हो जाएगा। हमारे भीतर जो एक महान् चेतना कार्य कर रही है उसकी शक्ति अनंत है, उसी का आश्रय ग्रहण करें तो प्रत्यक्ष आत्म-विश्वास जाग जाएगा तब तुम दूसरों के भरोसे भी नहीं रहोगे। संकल्प का ही दूसरा नाम है आत्म-विश्वास। वह जाग्रत हो जाए तो अपना विकास तेजी से अपने आप कर सकोगे। आज हम जैसे कुछ हैं अपने जीवन को जिस स्थिति में रखे हुए हैं अपने निजी विचारों

चेतना के प्रतिबिंब में अपने अंतर की शक्ति एवं दिव्य गुणों का परिचय प्राप्त कर उन पर दृढ़ आस्था रखने पर विश्वास का जन्म होता है। ऐसे आत्म-निर्माण—जीवन शोधन अपने में दिव्य गुणों के अभ्यास से ही संभव है। यह निश्चित है कि हमारे विश्वास का आधार आत्म-देव का, अपने अंतर में स्थित सनातन सत्य का परिचय प्राप्त करना ही है।

सामान्य तौर पर अहंकार भी विश्वास जैसा लगता है किन्तु अहंकार का आधार भौतिक पदार्थ, स्थूल सामग्री और मनोविकार होते हैं। स्वामी रामतीर्थ ने इसी तथ्य को प्रकट करते हुए बताया है—"विश्वास राम भी है और रावण भी। आत्म-निष्ठा पर केंद्रित विश्वास राम है तो अहंकार पर आधारित विश्वास रावण।" महर्षि वशिष्ठ ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए बताया है—"विश्वास कुल रानी है तो अहंकार बाजारू वेश्या, मूल रूप में एक स्त्री सेवा करती हुई परमार्थ में जीवन व्यतीत करती है, तो दूसरी खुद डूबती है और साथ में दूसरों को भी ले डूबती है।" अहंकार प्रेरित विश्वास विनाश, शोषण, पीड़ा, निर्दयता का कारण बनता है। हिटलर, मुसोलिनी, सिकंदर, नैपोलियन आदि में भी विश्वास कम नहीं था किन्तु वह अहंकार पर आधारित था और यह विश्वास उनके और जन-समाज के लिए अहितकर ही सिद्ध हुआ। अहंकार पर आधारित विश्वास क्लेश, अशांति, विनाश, दुर्गति उत्पात का ही कारण बनता है जबकि आत्म-निष्ठा पर आधारित विश्वास कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी मनुष्य को संतोष, प्रसन्नता, सुख, शांति, निर्मलता प्रदान करता है। हममें अटूट विश्वास तो हो किंतु उसका पोषण अंतर-चेतना, आत्मा के दिव्य गुण, शक्ति, सामर्थ्य आदि के द्वारा हो, न कि हमारे अहंकार से। आत्म-निष्ठा पर आधारित विश्वास ही अपनी शर्तें पूरी कर जीवन को उत्कृष्ट बनाता है।

विश्वास मनुष्य के सभी गुण और शक्तियों को केंद्रित करता है। उन पर अपना नियंत्रण रखता है। केंद्रित और नियंत्रित शक्तियाँ जब किसी ध्येय की पूर्ति में जुट जाती हैं तो

असंभव भी संभव हो जाता है। मनुष्य सामान्य से असामान्य बन जाता है। संसार में जो भी महान् कार्य हुए हैं उनकी नींव विश्वास और संगठित शक्तियों की सक्रियता पर आधारित थी।

विश्वास मनुष्य को सभी प्रकार के भय, संदेह, शंकाओं से मुक्त कर देता है। वस्तुतः भय, शंका, संदेह, आशंका वहीं होती है जहाँ अशक्ति कमजोरी, अभाव आदि होते हैं। आत्म-विश्वास मनुष्य में अदम्य शक्ति, साहस भर देता है और मनुष्य की ये मानसिक कमजोरियाँ तिरोहित हो जाती हैं। विश्वास की ज्योति जलते ही मनोभूमि पर छाई हुई अंधकार की काली घटाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। आत्म-विश्वासी को मौत का भी डर नहीं रहता और उसे कोई आशंका संदेह आदि उद्वेलित नहीं करते हैं।

हमें जीवन को महान् उत्कृष्ट उपयोगी बनाने के लिए, जीवन संग्राम में विजयी होने के लिए, संसार में अमर कृति छोड़ने के लिए आत्म-विश्वास की ज्योति अपने हृदय मंदिर में जलानी होगी। अपने अंतर के दिव्य गुणों और शक्तियों का परिचय प्राप्त करना होगा। क्षण-क्षण आत्मदेव की अनुभूति जगानी पड़ेगी। विश्वास के सहारे ही हम संसार के दुर्धर्ष पथ पर जीवन रथ को आगे बढ़ा सकेंगे और लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे। "विश्वास ? विश्वास ! अपने आप में विश्वास, ईश्वर में विश्वास, अपने आत्म-देव की अपार शक्तियों में विश्वास—यही जीवन की सफलता और महानता का रहस्य है।" स्वामी विवेकानंद ने इन उद्‌गारों को जीवन में चरितार्थ करना होगा, तभी हम महानता की चोटी पर पहुँच सकेंगे।

"मनुष्य अमृत पुत्र है, परमात्मा का युवराज है। पर धरती पर अपने पिता की फुलवारी में वह खुशियाँ मनाने, सैर करने आया है। आनंद मनाने आया है। मानव महान है, क्योंकि उसमें महानता के अधिपति आत्म-देव का निवास है।" हमें मानव जीवन की इस बुनियाद, महान् गौरव पर विश्वास करना होगा।

भी आत्म-विश्वास के अभाव में किसी नदी को पार नहीं कर सकता। वह बीच में फँस जाएगा, नदी के प्रवाह में बह जाएगा, अथवा हाथ-पैर पटककर वापिस लौट आएगा। यही बात भवसागर पार करने में लागू होती है। जीवन में अनेकों कठिनाइयाँ, उलझनें, अप्रिय परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इन झंझावातों में कठोर चट्टान की तरह अपनी राह पर अडिग रहने के लिए आत्म-विश्वास की आवश्यकता होती है।

लक्ष्य जितना बड़ा होगा, मार्ग भी उतना ही लंबा होगा और अवरोध भी उतने ही अधिक आएँगे, इसलिए उतने ही प्रबल आत्मविश्वास की आवश्यकता होगी। संसार भी आत्मविश्वासी का समर्थन करता है। आत्मविश्वास चेहरे पर आकर्षण बनकर फूट पड़ता है जिससे पराए भी अपने बन जाते हैं। अनजान भी हम राही की तरह साथ देते हैं। विपरीत परिस्थितियाँ भी आत्म-विश्वासी के लिए अनुकूल परिणाम प्रदान करती हैं।

आत्म-विश्वास का मूल स्वरूप है—आत्म सत्ता पर विश्वास करना। जिसे अपनी आत्मा की अजेय शक्ति महानता पर विश्वास है जो अपने जीवन की सार्थकता, महत्ता, महानता स्वीकार करता है उसी में आत्मविश्वास का स्रोत उमड़ पड़ता है, वही जीवन पथ के अवरोधों, कठिनाइयों को चीरता हुआ, राह के रोड़ों को धकेलता हुआ, अपना मार्ग स्वयं निकाल लेता है। प्रकृति भी आत्मविश्वासी पुरुष का साथ देती है, अपने नियमों का व्यतिरेक करके भी। अपने आपको तुच्छ, अनावश्यक समझने वाले संसार

पनप उठते हैं और तब दूसरों का विश्वास, आत्मीयता, सहानुभूति भी प्राप्त नहीं होती।

मनुष्य जैसा अपने आपको समझेगा उसका व्यक्तित्व आत्मिक स्तर भी वैसा ही बनेगा। अच्छी शिक्षा, साधन, सम्पत्ति पाकर भी मनुष्य आत्म-विश्वास के अभाव में तुच्छता एवं हीनता का अनुभव करते हैं और जीवन में कोई विशेष सफलता अर्जित नहीं कर पाते। वे जीवन की घिसी-पिटी राह पर, परिस्थितियों के थपेड़े खाते, रोते-झींकते अपना जीवन गुजार देते हैं। साधन, सुविधा एवं संपन्नता पाकर भी कष्टकारक जीवन बिताते हैं किंतु आत्म-विश्वासी सामान्य परिस्थितियों में ही खड़ा होकर जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करता है। आत्म-विश्वास की धरती में से ही पुरुषार्थ का अंकुर फूट निकलता है और पुरुषार्थ ही "वीर भोग्या वसुंधरा" पर स्वर्गीय जीवन का सृजन करता है। अपने आपको दीन, हीन, मलिन, पतित समझने वाले धरती पर बोझ ही बढ़ा सकते हैं, वे ही इस "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती को नरक तुल्य बना देते हैं।

आत्मविश्वास की ज्योति को जलाने, उसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए आंतरिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। जो व्यक्ति अपने मानसिक विकार, चिंता, भय, क्रोध, संदेह आदि से ग्रस्त हैं, वह स्वाधीन नहीं कहला सकता। वह तो परतंत्र हैं उसे ये विचार अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ पटकते हैं। ऐसी परतंत्रता में आत्मविश्वास का निवास नहीं होता। जो अपने आंतरिक और बाह्य जीवन पर स्वयं शासन करता है वही आत्म विश्वास की शक्ति को प्राप्त कर सकता है और इसी से मनुष्य की साधारण शक्तियाँ भी असाधारण बन जाती हैं। लोहे, ताँबे के तारों का कोई महत्त्व नहीं होता किन्तु जब उनमें विद्युत प्रवाह बह उठता है तो बड़े महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। विद्या, धन, शक्ति, साधन, संपत्ति यह कोई महत्त्व नहीं रखते, यदि उनमें चेतना केन्द्र आत्म-विश्वास जाग्रत नहीं होता।

आत्मविश्वास की वृद्धि के लिए उत्तरदायित्वों एवं जिम्मेदारियों का स्वागत कर उन्हें स्वीकार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक जिम्मेदारी के लिए पूर्ण लगन और श्रम से कार्य करके उसे सफल बनाने का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। छोटी-छोटी जिम्मेदारियों को पूरा करते ही मनुष्य में आत्मविश्वास की नींव मजबूत होने लगती है। जिस उत्तरदायित्व को ग्रहण करने का अवसर आये उसे सहर्ष ग्रहण किया जाय। उससे बचने की, घबराने की वृत्ति आत्मविश्वास को नष्ट करती है। विभिन्न जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए ही मनुष्य महत्त्वपूर्ण कार्यों को संपादन करने की क्षमता और आत्मविश्वास प्राप्त करता है।

जीवन में जो आदर्श निश्चय किये जाए जो आकांक्षाएँ बनाएँ, उन्हें जी जान से, तत्परता से पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाए। छोटी-छोटी सफलताओं से ही मनुष्य का आत्मविश्वास बढ़ता है। किसी भी क्षेत्र में दृढ़ निश्चय और प्रयत्न से सफलता किसी-न-किसी मात्रा में अवश्य मिलेगी, जिससे आत्मविश्वास जागेगा। खासकर जिन बातों में मनुष्य को डर, संदेह, घबराहट महसूस हो उनमें तो प्रयत्नपूर्वक हाथ डालना आवश्यक है। क्योंकि आत्मविश्वास के ये प्रबल शत्रु हैं। अँधेरे में डरने वाले यदि प्रयत्नपूर्वक अँधेरे में जावें तो उनका अँधेरे का डर दूर हो जाय। जिस काम में हाथ डालने से दुर्बलता के कारण हिचकिचाहट हो उस काम को अवश्य किया जाय।

जीवन में थोड़ी-बहुत गल्तियाँ एवं असफलता होना भी स्वाभाविक है। उनको सदा के लिए भुला देना ही श्रेयस्कर होगा। उनके बारे में अधिक सोच-विचार न किया जाय। पिछली भूलों की उपयोगिता तो इसी में है कि उनसे अनुभव प्राप्त कर भविष्य में वैसा न किया जाय। असफलताओं, पिछली भूलों का चिंतन करने पर दिनों-दिन आत्मविश्वास ही नष्ट होता है।

संसार के बड़े-बड़े कार्य आत्मविश्वास से ही संपन्न हुए हैं। प्रबल आत्मविश्वास संपन्न लोगों ने ही संसार का नेतृत्व किया

है। नया प्रकाश, नया मार्ग दिखाने वाले प्रबल आत्मविश्वासी रहे हैं। हमें आत्मविश्वास का महत्त्व समझना चाहिए और उसके लिए निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिए क्योंकि वही मनुष्य की शक्ति को बढ़ाता है।

हमारा आत्मविश्वास जाग्रत हो

शक्ति वृद्धि के लिए आदमी को आत्म-विश्वासी होना पड़ता है। आत्म-विश्वास में वह शक्ति भरी होती है जो मनुष्य को सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचा देती है। ऐसा मनुष्य न तो किसी के उपहास की परवाह करता है न विघ्न-बाधाओं से डरता, घबड़ाता है। आत्म-विश्वास मानव-जीवन का बल है जो संसार में बड़ा कार्य, कम साधनों के द्वारा भी सरलतापूर्वक संपन्न करा देता है।

इमर्सन ने कहा—"अपने ऊपर विश्वास करो—आपका हृदय शक्ति से भर जायगा।" हजारों-लाखों वर्षों से लोग बाह्य उपकरणों का भरोसा करते रहे हैं, आज भी करते हैं किंतु जिन्होंने अपनी आत्मिक शक्तियों को पहचाना उन्होंने कुछ ऐसी विभूतियाँ प्राप्त कीं, कि लोग उन्हें जननायक, विजयी और महान् मानने के लिए विवश हुए। ऐसे मनुष्यों ने सदैव अपनी नैसर्गिक सरलता और मौलिक गरिमा का आह्वान किया, जिससे उनमें वह तेजी आई—वह स्फूर्ति, वह शक्ति पैदा हुई—कि बड़े-बड़े पहाड़ उनके आगे झुक गये। सफलताओं ने स्वयं आगे बढ़कर उन्हें विजयमाला पहनाई। मुगल सम्राट बाबर, विश्व-विजेता नैपोलियन, जर्मन के प्रधानमन्त्री बिस्मार्क आदि ऐसे ही महापुरुषों में थे, जिन्होंने आत्म-विश्वास के बल पर आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कीं।

यह कभी भी मत सोचिये कि आप अकेले हैं, आपकी शक्ति और सामर्थ्य बिल्कुल छोटी है, आपका ज्ञान, शारीरिक क्षमता सब कुछ स्वल्प है। इससे आपमें दीनता और हीनता की मारक

भावनाएँ पैदा होंगी जो आपके भविष्य को अंधकारमय बना देंगी। सोचिये आपके पास क्या नहीं ? आप साहसी हैं, कर्मशील हैं, पौरुष दिखाने की क्षमता है। आपका शरीर मोटा-तगड़ा न सही स्वस्थ तो है, निरोग है। महात्मा गाँधी का वजन तो कुल ९६ पौण्ड था। फिर आप यह क्यों मान रहे हैं कि आपकी शक्ति सीमित है। इन शक्तियों का थोड़ा उपयोग तो कीजिये तब आपको पता चलेगा कि आप कितने बलशाली हैं ? आप भी जार्ज हर्बर्ट के इस मंत्र को अपने जीवन में धारण करके तो देखें—"बेखटके अकेले रहो। अपना आदर आप करो और देखो कि तुम्हारी आत्मा की क्या दशा है ? ......।" जिनके हृदय में यह ज्ञान प्रकाशित है, वह अपनी संपूर्ण शक्तियों को एक ही केंद्रबिंदु पर जुटाकर आश्चर्यजनक लाभ तो प्राप्त कर ही सकता है।

आत्म-विश्वास का अर्थ है अपनी परिस्थितियों और समस्याओं का हल अपने आप ढूँढ़ना। आप क्यों दूसरे लोगों से सहायता की याचना करते हैं। उनके पास भी तो वही उपकरण हैं जो परमात्मा ने आपको भी दिए हैं तो क्यों नहीं अपने हाथ-पाँव चलाते ? अपनी बुद्धि का उपयोग करते ? बाहरी मनुष्य आपको सहायता देकर ऊँचा उठा नहीं सकता इसके लिए आपको अपनी ही शक्तियों का सहारा पकड़ना पड़ेगा। प्रत्येक दिशा में आत्म-विश्वास जाग्रत करना पड़ेगा।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि आप सहयोग और संगठन की वृत्ति से अलग होने का प्रयत्न करने लगें या आप औरों से सीख और उचित परामर्श भी लेने का परित्याग कर दें। सामाजिक जीवन में यह किसी प्रकार भी संभव नहीं है। इसे तो मानसिक दुराग्रह या आत्मिक दुर्बलता ही कहा जायगा। आत्म-विश्वास का अर्थ यह है कि हम अपने स्वाभिमान को दुर्बल न होने दें। आत्महीनता की, निराशापूर्ण भावनाएँ मनुष्य को भाग्यवाद की ओर प्रेरित करती हैं, जिससे लोगों में अकर्मण्यता का संचार होने लगता है। आत्म-विश्वास का उपदेश करने का

यह उद्देश्य नहीं कि मनुष्य दैववाद के भ्रामक सिद्धांत का प्रतिपादन करने लगे परन्तु परमात्मा की दी हुई शक्तियों को सदैव क्रियाशील रखने का नाम ही आत्मविश्वास है।

आध्यात्मिक आस्थाओं से संसार में पग-पग पर सुरक्षा, निर्माण और सुख की परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। आत्मा स्वयं पूर्ण है वह अनंत शक्तियों का भंडार है। इसके आश्रय में आने वाला व्यक्ति ही इन शक्तियों का अधिकार प्राप्त करता है। जो इसका सदुपयोग करता है, उसी का जीवन व्यवस्थित रहता है। दृढ़ इच्छाशक्ति, अटूट परिश्रम, अनंत धैर्य किसी भी बाह्य उपकरण से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आप जीवन के व्यवहार में इन्हें प्रयुक्त करिये आपका भविष्य अवश्य उज्ज्वल बनेगा।

आत्म-विश्वास मनुष्य की संपूर्ण शक्तियों को एक स्थान पर संगठित करता है। संगठित शक्तियों को जीवन के जिस क्षेत्र में उतार देते हैं वहीं भारी उथल-पुथल मच जाती है। दूसरे लोग भी सहारा भरोसा करने लग जाते हैं। इसका श्रेय शक्तियों के संगठन को होता है। चित्त की एकाग्रता के प्रबल होने से मस्तिष्क की सम्पूर्ण कार्यकारिणी शक्तियाँ विकसित होती हैं और उसी क्षेत्र में काम करने लग पड़ती हैं, आत्म-विश्वास ही हमारी गुप्त शक्तियों के जागरण का मूल मंत्र है।

आत्म-विश्वास और दृढ़ प्रतिज्ञा के बिना मनुष्य परिस्थितियों का दास बना रहता है। हर घड़ी किसी-न-किसी सुयोग की चिंता में डूबा रहता है। कहीं से जमीन में गढ़ा धन मिल जाए, कोई ऐसा आशीर्वाद दे जाय कि परीक्षा में उत्तीर्ण हो जायें, शादी-विवाह, रोजी-रोजगार आदि के लिए जो किसी घटना या संयोग की ताक में बैठे रहते हैं, उनकी आत्मिक शक्तियों में ऐसा जंग लग जाता है, जो जीवनभर छुटाए नहीं छूटता। अंततोगत्वा बुरे परिणाम, दुःखद परिस्थितियाँ और सफलता के प्रेत-पिशाच उन्हें आ घेरते हैं। तब पछतावा ही हाथ लगता है। पुरुषार्थ और प्रयत्न के क्षण तो तब तक समाप्त हो जाते हैं।

आत्म-विश्वास का पूरक भाव है दृढ़ इच्छाशक्ति। यही तो वह रहस्य है जो बिगड़ी बनाता है, ऊँचे उठाता और समस्याओं से पार लगाता है। दृढ़ इच्छाशक्ति से संपन्न किये हुए कार्य सदैव ही सफल हुए हैं, आगे भी होते रहेंगे किन्तु द्विविधापूर्ण निर्णय एक ही क्षण में सफलता का प्रवाह दूसरी ओर बदल देते हैं। जो व्यक्ति भूल करने के भय से अथवा बीच में ही कार्य के छूट जाने की आशंका से कोई निश्चित निर्णय नहीं कर पाते, उनसे सचमुच ही गल्तियाँ होने लगती हैं। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह एक सुदृढ़ आधार का निर्माण करके जिसके सहारे जीवन को ऊँचा उठाता हुआ ध्येय पथ पर अनवरत आगे बढ़ता रहे। इसके लिए दृढ़ता, सुनिश्चितता एवं संकल्प शक्ति का आह्वान करना पड़ता है। आत्मविश्वास इन तीनों गुणों का मिश्रित रूप माना जा सकता है।

मनोविज्ञान के महापंडित मैक्डूगल ने लिखा है—मनुष्य आत्मविश्वास (मास्टर सेण्टीमेंण्ट्स) या अच्छे अर्थ (सेंस) में अहंभाव रखकर अपने व्यक्तित्व को महान् बना सकता है। आत्म-विश्वास घमंड की श्रेणी में नहीं आता यह आत्म-सम्मान या स्वाभिमान की रक्षा का भाव है, उससे मनुष्य के गुणों और कार्य क्षमताओं का विकास होता है। इन्हीं के आधार पर महत्त्वाकांक्षाओं की सफलता के लिए द्वार खुलते रहते हैं।

इंग्लैंड का राजा मरा तब उत्तराधिकार की समस्या सामने आई। योग्य व्यक्ति का चुनाव कठिन बात थी। यों हर कोई राजा बनने का इच्छुक था, राजपुरोहित मेर्लीन को पता था कि जिस व्यक्ति में आत्म-विश्वास की भावना न होगी, वह एकाएक अर्जित सफलता को लाटरी में प्राप्त धन की तरह गँवाएगा ही नहीं, जीवन में अनेक अप्रत्याशित बुराइयाँ और लाद लेगा। इसलिए उसने उत्तराधिकार के चुनाव का एक अनोखा ही उपाय निकाला।

लोहे की एक तिपाई में उसने एक तलवार घुसेड़ दी और उसे एक सभा में मैदान में रखकर कहा—"यह तलवार जादू के

द्वारा इस लोहे में गाड़ी गई है, जो उसे अपनी शक्ति से निकाल देगा, वही राजा बनेगा। सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। एक से एक बढ़कर बलिष्ठ और पहलवान लोग बैठे थे पर सब डर गए। आत्म-विश्वास के अभाव में कोई भी उस परिस्थिति का लाभ न ले सका।

दरबार में आर्थर नामक एक सैनिक भी बैठा था। उसने सोचा—यह सबसे अच्छा अवसर है, जब अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को सफल किया जा सकता है। यदि सचमुच कुछ जादू हुआ भी तो संसार को यह तो पता चलेगा कि मनुष्य की शक्ति जादू की शक्ति से कमजोर है अन्यथा तलवार को तो उखाड़कर रख ही दूँगा।

आर्थर उठा और एक झटके में उसने तलवार निकाल दी। इस तरह वह इंग्लैंड का राजा बना। इंग्लैंड के इतिहास में यह न्याय, बुद्धिमानी और गुणों के प्रति आदर के लिए—विक्रमादित्य के समान विख्यात हुआ। आत्म-विश्वास हो तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता। पर हमें उसे पढ़ना और समझना भी चाहिए। शुद्ध अहंभाव, आत्म-शक्ति पर विश्वास करना, जिस व्यक्ति को आ गया, उसकी सफलता को कोई रोक नहीं सकता।

अपने पास जो शक्तियाँ हैं, उन पर विश्वास करना और उन्हें अच्छे काम में प्रयुक्त होने का अवसर देना ही आत्म-विश्वास है। उसे इस घटना से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

डेनमार्क का राजा कैन्यूट १०५८ में गद्दी पर बैठा। इस गद्दी पर कोई भी राजा बहुत दिन तक नहीं टिकता था। कैन्यूट ने देखा कि उसका कारण चापलूस दरबारी हैं, जो राजाओं की झूठ-मूठ प्रशंसा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया करते हैं।

कैन्यूट के साथ भी यही हुआ। कुछ दरबारी तो उसे सर्वशक्तिमान् ईश्वर का अवतार तक कहने लगे। इस पर कैन्यूट को शंका हुई। वह उन दरबारियों को लेकर सागर तट पर

आया और समुद्र की ओर देखकर बोला—"ओ इधर आने वाली लहर रुक और पीछे लौट जा।" लेकिन लहर न रुकी, न लौटी, जब तक किनारा नहीं मिल गया, तब तक आगे ही बढ़ती रही।

कैन्यूट ने दरबारियों को डाँटकर कहा—"तुम लोग आगे इस तरह बेवकूफ बनाने का प्रयत्न मत करना। मनुष्य किसी के कहने से सर्वशक्तिमान् नहीं हो जाता, उसे स्वाभाविक प्रवाह की तरह आगे बढ़ना और अपनी शक्तियों को खुले तौर पर किनारे तक पहुँचने का अवसर देना चाहिए।" यही आत्म-विश्वास की सबसे अच्छी परिभाषा है।

और राजा कैन्यूट पहला व्यक्ति था, जिसने न केवल डेनमार्क वरन नार्वे और इंग्लैंड तीनों पर एकसाथ सफलतापूर्वक शासन किया। यह है इस आत्म-विश्वास का प्रत्यक्ष परिणाम, जो धीर-वीर व्यक्तित्व में ही होता है।

● ●

आत्महीनता की ग्रन्थि से अपने को जकड़िए मत

बचपन में प्रेम और सम्मान का न मिलना, उपेक्षा उपहास तथा अभावग्रस्त स्थिति में समय गुजारते रहने वाले बच्चे बड़े होने पर प्राय: आत्महीनता के शिकार बन जाते हैं। बीमार, अपंग, मंदबुद्धि बच्चे भी बार-बार डाँट-डपट सुनते रहते हैं। फलत: उनका मन यह मान बैठता है कि उनकी स्थिति दूसरों की अपेक्षा है ही गई-गुजरी। उनका भाग्य कुछ ऐसा ही बना है। पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों के लोग तथा महिलाएँ आरंभ में ही घटिया समझी जाने की—उपेक्षित स्थिति में रहने के कारण अपने आप को हेय स्थिति का स्वयं भी मान बैठती हैं और उसी स्तर का अपने को समझते हुए सोचने का ढंग ऐसा बना लेते हैं, मानो वे बने ही घटिया मिट्टी से हैं। इस मान्यता के कारण दब्बूपन उनकी प्रत्येक क्रिया से टपकता रहता है। दूसरों के सामने वे अपने आपको ठीक तरह व्यक्त नहीं कर सकते, यहाँ तक कि खुले मन से हँस-बोल भी नहीं सकते।

कुछ लोग किसी बाहरी दबाव या अभाव से नहीं अपनी दब्बू प्रकृति के कारण ही अपने को हेय स्थिति में डाल लेते हैं। वे दूसरों के बड़प्पन अपने हेय होने की बात को अकारण ही बढ़ा-चढ़ाकर मान बैठते हैं और एक बहुत ऊँची-नीची, खाई खोद लेते हैं।

हीनताग्रस्त व्यक्ति को सहज ही पहचाना जा सकता है वह आलसी, असंतुष्ट, दब्बू, चापलूस तथा बात-बात पर रूठने वाला होगा। जरूरत से ज्यादा नम्रता प्रदर्शित करता है। उससे कोई भी बेगार ले सकता है, उधार माँग सकता है, ठग सकता है।

मन में वैसा न करने की बात रहते हुए भी इतनी इंकार करने की हिम्मत नहीं होती और सामने वाले का आग्रह टालते नहीं बनता। ऐसे व्यक्ति किसी मिलन गोष्ठी में एक कोने में दबे सहमे सकुचे बैठे होंगे ताकि कोई उनसे कुछ पूछ न बैठे। कुशल प्रश्नों का उत्तर देना तक उन्हें भारी पड़ता है। ऐसे लोग आये दिन ठगे जाते हैं, उनसे कोई भी बेगार लेता है और काठ का उल्लू समझता है। लाभ उठाने वाले कुछ एहसान भी नहीं मानते क्योंकि वे समझते हैं जो पाया कमाया है, वह दब्बू आदमी की दुर्बलता का चतुरतापूर्वक लाभ उठा लेना भर था, इसमें ठगे जाने की कोई उदारता थोड़े ही थी।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त २२ मनोविज्ञान वेत्ताओं के एक आयोग को चिंता के कारणों का पता लगाने का काम सौंपा था उस दल ने इस मर्ज के हजारों मरीजों की कुरेद बीन करने पर यह पाया कि ऐसे लोग वस्तुतः परले सिरे के डरपोक होते हैं। भूत और साँप का न सही भविष्य की आशंकाओं का डर उन्हें निरंतर सताता रहता है। इसके अतिरिक्त वे 'अपनी वर्तमान स्थिति अपर्याप्त असन्तोषजनक समझते रहते हैं। यों निर्वाह में कठिनाई उत्पन्न करने वाला अभाव इनमें से किसी विरले को ही होता है, आयोग ने यह भी बताया है कि भय एक संक्रामक रोग है वह छूत की बीमारी की तरह साथ रहने वाले पर भी असर करता है। छोटा बालक जो अभी संसार की परिस्थितियों के बारे में कुछ भी नहीं समझता, माता को डरी हुई देखकर स्वयं भी रोने लगता है। उसे डरे हुए की दयनीय स्थिति को देखकर स्वयं डर लगता है।

कंधा झुकाये हुए, जमीन में आँखें गाड़े हुए, कुछ लोग डरे-सहमे लोगों की आँखों से अपने को बचाते हुए सड़क पर चलते दिखाई पड़ेंगे। उनके पैर डगमगाते से लगेंगे। सीधी लाइन चलना उनसे बन नहीं पड़ेगा। साँप की तरह टेढे तिरछे चलेंगे, पैर एक-दूसरे में लिपटते से दिखाई पड़ेंगे। इसके विपरीत कुछ लोग सीना ताने फौजियों जैसे कदम मिलाकर चलते हुए सीधी

लाइन चल रहे होंगे। चेहरे पर विश्वास भरी मुस्कान दीख रही होगी और आँखों से चमक निकलती दिखाई पड़ेगी। यह अंतर शरीर की स्थिति से नहीं मानसिक स्तर से संबंध रखता है। जिन पर आत्महीनता सवार है वे न केवल सड़क पर चलते हुए वरन् हर कार्य में अपनी दयनीय दुर्बलता व्यक्त कर रहे होंगे जबकि आत्म विश्वासी व्यक्ति की तेजस्विता उनके हर क्रिया-कलाप से हर भाव-भंगिमा से टपक रही होगी।

अत्यधिक हीनताग्रस्त व्यक्ति उसके भार से दब जाता है, हिम्मत खो बैठता है और उज्ज्वल भविष्य की आशा छोड़कर हताश रहने लगता है अपनी क्षमता पर अविश्वास करने वाला एक प्रकार से हाथ-पाँव रहते हुए अपंग और बुद्धि रहते हुए भी संशयग्रस्त रहता है। वह करने को तो बहुत कुछ सोचता है। पर साहस के अभाव में कुछ कर नहीं पाता। करता है तो फल पकने तक किसी वृक्ष को सींचते रहने के लिए जितने धैर्य की आवश्यकता पड़ती है, उतनी जुटा नहीं पाता। अस्तु अधिकांश कार्यों में असफल रहता है और हर असफलता उसे और भी अधिक निरुत्साहित करती चली जाती है।

दब्बूपन के अतिरिक्त विकृत आत्महीनता उद्धत बनकर उभरती है। यह ऐसे कृत्य करने का उकसाती है, जिससे लोग उसे भी असाधारण समझें। विधिवत् असाधारण बनने के लिए तो मनुष्य को व्यक्तित्व का समग्र निर्माण करना पड़ता है और आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनाने का उदात्त साहस जुटाना पड़ता है। पर उद्धत काम करने के लिए उच्छृंखलता अपनाने और आतंकवादी रास्ते पकड़ने से काम चल जाता है। यों आरंभ में होता तो यह भी कठिन है, पर उसी स्तर के आवारा लोगों का साथ ढूँढ लेने में वह अभ्यास जल्दी ही हो जाता है और गुंडागर्दी से दूसरों को आतंकित करने की सफलता पाकर आत्म गौरव की भूख बुझा ली जाती है। साथ ही आर्थिक तथा दूसरे लाभ भी कमा लिये जाते हैं। सस्ती तरकीब से दुहरा लाभ पाने से उत्साहित होकर वे इस प्रकार की गतिविधियाँ एक पेशे के

रूप में अपना लेते हैं। अपराधों में संलग्न उच्छृंखल गुंडागर्दी अपनाने वाले व्यक्ति बहुत करके आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित ही होते हैं। निजी जीवन में थोड़ी-सी भी विपत्ति आने पर उन्हें बेतरह रोते-कलपते पाया जाता है।

अधिक बन ठनकर रहने वाले और साज-श्रृंगार करने वाले नर-नारियों में अधिकांश ऐसे होते हैं, जो अपने आपको तिरस्कृत, उपेक्षित एवं हेय स्तर का मानते हैं। वे श्रृंगार साधनों को अपनाकर तड़क-भड़क के कपड़े और चमचम करते जेवर पहनकर दूसरों के साथ अधिक आकर्षक बनने का प्रयत्न करते हैं ताकि लोग उन्हें असाधारण समझें। अमीरी का ढोंग रचते हुए पैसे का अपव्यय करते हुए कई व्यक्ति अपने परिचितों पर यह छाप छोड़ना चाहते हैं कि वे बड़े आदमी हैं और बड़े आदमियों की तरह चाहे जितना पैसा फूँक सकने में समर्थ हैं। ऐसे आदमी कम कीमत की मजबूत चीजें खरीदने की अपेक्षा महँगी और कमजोर चीजें खरीदते हैं, इस खरीद में उनका प्रयोजन दूसरों पर अपनी सुरुचि एवं कलाकारित की छाप छोड़कर बड़प्पन का आतंक जमाना भर होता है। ऐसे लोग सदा ऋणी बने रहते हैं और आर्थिक तंगी भुगतते हैं। लाभ इतना ही होता है कि उनकी आत्महीनता को कुछ समय के लिए राहत मिल जाती है।

अमेरिका में १० हजार पीछे एक व्यक्ति हर साल आत्महत्या करके मरता है। किसी-किसी वर्ष तो यह अनुपात बहुत अधिक बढ़ जाता है। एक साल तो यह संख्या १५,४०० पहुँच गई थी। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक संख्या में आत्महत्या करती हैं।

लोग क्यों आत्मघात करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में दरिद्रता, बेकारी, शारीरिक कष्ट, पारिवारिक कलह, असफल प्रेम, अपमान, निराशा, विपत्ति की आशंका आदि कई कारण गिनाये जा सकते हैं। पर सबसे बड़ा कारण होता है—मानसिक असंतुलन, जिसके कारण लोग छोटी-छोटी कठिनाइयों या असफलताओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मान लेते हैं और उस

भयंकरता से बचाव का कोई उपाय न सूझने पर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हुआ व्यक्ति अपने ऊपर ही आक्रमण कर बैठता है और दूसरों को मार डालने का साहस न जुटा सकने पर अपने आपका ही वध कर डालता है।

आत्महीनता की व्यथा से ग्रसित व्यक्तियों को मनःचिकित्सकों का परामर्श है कि—वे उचित और अनुचित का अंतर करना सीखें और इतना साहस जुटाएँ कि जो सही है उसी को अपनाने और जो गलत है उससे इंकार करने में अपना स्पष्ट मत व्यक्त कर सकें। सहमत होना और हाँ करना अच्छी बात है, पर जो उचित नहीं जँचता उसे अस्वीकार करने की हिम्मत भी रखनी ही चाहिए। सोचने में यह बात भी सम्मिलित रखनी चाहिए कि हर सही-गलत बात में हाँ-हाँ करते रहने से दूसरों की दृष्टि में अपना वजन घट जाता है और इज्जत चली जाती है। विकसित व्यक्तित्व का अर्थ है—अपनी मान्यता को स्पष्ट किन्तु नम्र और संतुलित शब्दों में कह सकना। जो ऐसा नहीं कर सकता वह अपने मूल्य को आप ही गिराता है। हँसना और हँसाना एक ऐसी आदत है जिसे पैदा कर लेने से आत्महीनता की ग्रन्थि जमने नहीं पाती और जम भी जाए तो धीरे-धीरे खुलती चली जाती है।

जन-संपर्क के काम करने की आदत डालना भी इस दृष्टि से एक अच्छा उपचार है। चार दुकानों पर मोल भाव करके और घटिया-बढ़िया तलाश करके शाक-भाजी खरीदने का नुसखा छोटा होने पर भी इस रोग में बड़े काम का है। अपने हाथों टिकट खरीदने, सामान बुक कराने, सीट रिजर्व कराने, जैसे छोटे काम करने से भी हिम्मत खुलती है। आदान-प्रदान में वार्तालाप करना आवश्यक हो जाता है। गोष्ठियों और प्रतियोगिताओं में भाग लेने से भी अपनी अभिव्यक्तता प्रकट करनी पड़ती है। यह अच्छे अभ्यास है।

अपने बारे में यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं कुछ नहीं हूँ। वरन् यह कहना चाहिए कि मैं भी कुछ हूँ। एक महत्त्वपूर्ण और

प्रतिभावान व्यक्ति हूँ। अपने प्रति और दूसरों के प्रति न्याय उपलब्ध कराने के लिए मेरे विचारों और प्रयत्नों का वजनदार मूल्य है। विश्व भर में संव्याप्त असीम बुद्धि चेतना और प्रचंड शक्ति सामर्थ्य का समुचित अंश मुझमें विद्यमान है और विकास और सामाजिक प्रगति में मेरी प्रतिभा की अपनी गरिमा है जिसे अक्षुण्ण रखना और विकसित करना मेरे परम पवित्र उत्तरदायित्व हैं।

● ●

आध्यात्मिक आधार ही सभी मनोरोगों का उपचार

श्रीमद् भगवद्गीता के प्रथम अध्याय का नाम 'अर्जुन विषाद योग' है क्योंकि अर्जुन के इस विषाद ने अंततः उसे कृष्ण की प्रज्ञा से जोड़ा, संभवतः इसीलिए इस अध्याय को 'विषादयोग' कहा गया है। पर, यों विषाद एक रोग ही है।

यह विषाद रोग मनुष्य को गहरे भावनात्मक आघातों के कारण हो जाता है। जीवन में निरंतर परिवर्तनशील परिस्थितियाँ, मन के सामने विभिन्न संकल्प विकल्प उपस्थित करती रहती हैं। जिन परिस्थितियों से जूझ सकने की मन की पूर्व तैयारी हो उनके आ पड़ने पर तो व्यक्ति को मानो अपने बुद्धि कौशल, साहस, संकल्प और आस्था के स्वयं परीक्षण का अवसर मिल जाता है और विभिन्न उतार-चढ़ावों का खट्टा-मीठा रस लेते हुए वह मन में एक स्फूर्ति का अनुभव करता है। संघर्ष जटिल हुआ, तो बीच-बीच में कुछ भय चिंता, निराशा की भी स्थितियाँ आती हैं। पर आस्था प्रचण्ड हुई और धैर्य अडिग रहा, तो संघर्ष की समाप्ति उतना ही संतोष भी देती है।

किंतु अप्रत्याशित परिस्थितियाँ पूर्व तैयारी के अभाव में मन को स्तम्भित-सा कर देती हैं। ये परिस्थितियाँ या तो हमारी जानकारी की सीमाओं के कारण अप्रत्याशित लगती हैं या फिर हमारे विवेक की सीमा के कारण अर्थात् यह हो सकता है कि हमारी बुद्धि ने जितना-कुछ, सोचा-समझा और कल्पित-अनुभूत किया हो उससे सर्वथा भिन्न कोई घटनाएँ घट जायें या फिर ऐसा हो सकता है कि विवेक से काम न लेते हुए जगत व्यवहार को नित्य देखते हुए भी, मन अपने बारे में कुछ चित्र-विचित्र कल्पनाएँ कर ले मोह पा ले और जब विश्व-गति के अनुसार काल क्रम से घटनाएँ पढ़ें, तो वे एक अप्रत्याशित आघात प्रतीत हों।

कारण चाहे जानकारी का अधूरा रह जाना हो, चाहे विवेक की कमी हो, किंतु अप्रत्याशित परिस्थितियों से बहुधा व्यक्ति के मन में भावनात्मक आघात पहुँचता है। चोट गहरी हुई तो मन पर गहरा विषाद छा जाता है, जिसका दीर्घकालीन प्रभाव-परिणाम होता है।

जानकारी की कमी, कोई अस्वाभाविक बात नहीं। एक मनुष्य के मस्तिष्क के सक्रिय हिस्से की अपनी सीमायें होता और विश्वव्यापी हलचलों उनसे बहुत आगे होती हैं। अतः जिसका अनुमान भी न हो पाये, ऐसी परिस्थितियों का उपस्थित हो जाना तनिक भी अचरज की बात नहीं। परिस्थिति की आकस्मिकता से प्रारंभिक व्यवहार में कुछ कठिनाई का अनुभव हो यह भी स्वाभाविक है। पर, उसमें उद्विग्न हो उठने जैसी बात कुछ नहीं। विषाद-रोग तो मात्र मोह का ही परिणाम होता है।

आज समाज में विषाद रोग का सर्वव्यापी विस्तार हो रहा है क्योंकि परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव तो आता ही रहता है और उनके लिए मन तैयार रहता नहीं। अज्ञान और मोह के चक्कर में फँसा मन अपनी अलग ही दुनियाँ बसाये रहता है। इस स्थिति में परिस्थितियों की स्वाभाविक रूप भी उसे नये-नये आघात पहुँचाता है और मन में असंतोष, हताशा, उदासी तथा

अवसाद की परतें घनीभूत होती रहती हैं। विषाद रोग की जड़ें फैलती जाती हैं।

अज्ञान और मोह के जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कार हमारे चित्त में अंकित रहते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक इन्हीं काम, क्रोधादि की चित्तवृत्तियों को 'प्राइमरी इंस्टिंक्ट्स' (प्राथमिक प्रवृत्तियाँ) कहते हैं। इन्हें प्राथमिक इसी अर्थ में कहा—माना जा सकता है कि ये प्राथमिक कक्षा में प्रविष्ट शिशु अपरिमार्जित और असंस्कृत होती हैं। सुसंस्कृत समाज का सदस्य बने रहने के लिए इन प्राथमिक वृत्तियों का परिमार्जन आवश्यक होता है। जब यह परिमार्जन संस्कार—शुद्धि के रूप में होता है तब तो वह सार्थक होता है, पर जब वह एकांगी और विकृत शिक्षा तथा शहरी परिवेश के दबाव मात्र से होता है, तब बाहर-ही-बाहर यह परिवर्तन घटित होता है। तब भीतर वही असंस्कृत चित्तवृत्तियाँ उफनती रहती हैं और बाहर-भीतर का यह संघर्ष प्रचण्ड अंतर्द्वंद्व को जन्म देता है। इस दीर्घ अंतर्द्वंद्व से ही गहरा विषाद चित्त पर छा जाता है और अनेक मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

डॉ० ब्राउन, डॉ० पीले, मैक्डूगल, वार्ल्स जुंग प्रभृति अनेक प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि रक्त-विकार फोड़े-फुंसी, सामान्य चर्मरोग से लेकर आँतों में घाव टी० बी०, कैन्सर तक के रोगों का आधार दूषित संस्कारों से उत्पन्न प्रबल अन्तर्द्वंद्व और प्रचंड मानसिक आघात ही होते हैं।

मैक्डोनल्ड ने कहा है—"अमेरिका में कुल रोगियों में से आधे मनोरोगी होते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, दंभ, छल-छद्म, कामविकार और क्रोध के भाव इन मानसिक रोगियों के भीतर अधिकार जमाये रहते हैं। डॉक्टर इन रोगों का कारण नहीं जान पाता। रोगी मनुष्य भी कई बार स्वयं इन कारणों को बिल्कुल नहीं जान पाता। पर होते हैं ये मन की दूषित हलचलों और दुष्चक्रों के कारण ही।

एड्रनल ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। इसकी अधिकता से जख्म हो जाता है और तब पाचन संबंधी अनेक रोग घेरे रहते हैं।

अच्छे खासे खाते-पीते घरों के माता-पिता इस बात से व्यथित-चिंतित पाए गए हैं कि उनके बच्चे खूब खाने-पीने के बावजूद क्षीण और निर्बल ही बने रहते हैं। इसका कारण भी यही पाया गया है कि इन खाते-पीते घरों का पारिवारिक वातावरण संस्कार युक्त नहीं होता। वहाँ सभी लोग असंतुष्ट, विक्षुब्ध, उद्विग्न, अप्रसन्न रहते हैं। ऐसे वातावरण का बच्चों पर गंभीर दुष्परिणाम होता है और उन्हें दिये गये अच्छे भोजन का सुपरिणाम नहीं दिखाई पड़ता।

मानसिक कुंठाओं से त्रस्त व्यक्ति जब मद्यपान का सहारा लेते हैं तो उनमें पहले से ही अधिक स्रवित 'ए० सी० टी० एच०' हारमोन्स का और अधिक स्राव होने लगता है। तब व्यक्ति की स्थिति अधिकाधिक बिगड़ती जाती है।

आज के मानसिक चिकित्सा क्षेत्र में एक विचित्र मान्यता यह प्रतिपादित की जा रही है कि मानसिक रोगियों को इच्छित यौनाचार अथवा दूसरे प्रकार से असामाजिक कार्य करने की एक सीमा तक छूट दी जाय ताकि उनकी दमित इच्छाओं का समाधान हो सके। यह उपचार दूरदर्शिता की कसौटी पर किसी भी प्रकार खरा नहीं उतरता क्योंकि भूतकाल में जिस प्रकार इच्छाएँ दबाने से कुंठाएँ उत्पन्न हुई, उसी प्रकार अब नये सिरे से अनैतिक एवं असामाजिक कार्य करने से आत्म-ग्लानि होगी और नये दुराव के कारण नई कुंठाएँ उत्पन्न होंगी। यह तो एक रोग को दूर करने के लिए दस नये रोग बुला लेने जैसा उपचार हुआ। इससे जिस लाभ की अपेक्षा की गयी है वह तो मिलेगा नहीं दूसरी नयी बोझिलता सिर पर और चढ़ जायेगी और रोगी को नयी परेशानी में डालेगी।

मानसिक रोगों का सही उपचार ऐसे रोगियों को प्रेम, सहानुभूति, स्वतंत्रता एवं हल्के-फुल्के वातावरण में रखना है। प्राकृतिक सुंदर दृश्यों का एकांत स्थान हो तो और भी अधिक उत्तम है यदि स्थान अत्यधिक कोलाहलपूर्ण नहीं है तो सामान्य जगहों पर भी उपयुक्त जलवायु के स्थान में रखा जा सकता है। महत्त्वपूर्ण बात जलवायु नहीं वातावरण है। रोगी जहाँ अपने लिए स्नेह-सम्मान का अनुभव करे हँसने-हँसाने की परिस्थितियाँ देखे—और मित्रता का व्यवहार अनुभव करे तो वहाँ बदली हुई परिस्थितियों में मनःस्थिति भी बदल सकती है और मानसिक रोगी बिना किसी उपचार के भी अच्छे हो सकते हैं।

फिनलैंड की एक युवती गर्भाशय के कैंसर से पीड़ित थी। डॉक्टरों ने परीक्षण कर रोग को असाध्य बताया था तथा ऑपरेशन या किसी भी प्रकार के उपचार की संभावना समाप्त घोषित कर दी थी।

वह अविवाहिता युवती जीवन से निराश हो गयी। उसने आत्महत्या का प्रयास किया। प्रसिद्ध साहित्यकार गोनर मैटन उसी मुहल्ले में रहते थे। उन्होंने उसे आत्महत्या का प्रयास करते देख लिया तथा दौड़कर उसे बचा लिया। साथ ही अपनी करुणा एवं स्नेहसिक्त संवेदना से युवती के जीवन में आशा की गुदगुदी पैदा कर दी। पर यह आशा प्रारंभ में क्षीण ही रही। कुछ ही दिनों में युवती को पुनः अपने भविष्य में अनंत अंधकार होने का स्मरण हो जाता और वह पुनः आत्महत्या का प्रयास करती। गौनर सदा सतर्क रहते अतः वह हर बार उसकी रक्षा कर लेते। साथ ही और अधिक प्रेम एवं करुणा उड़ेलते। युवती के मन में गौनर के प्रति तो श्रद्धा के भाव दृढ़ हो गए। पर अपने जीवन से वह अभी भी निराश थी।

पर एक दिन इस निराशा की जड़ ही उखड़ गई। गौनर ने उस युवती से विवाह का प्रस्ताव किया। स्वाभाविक ही पहले तो युवती ने तीव्रता से अस्वीकार कर दिया। पर गौनर की दृढ़ता से वह जान गयी कि इनका प्रेम निश्छल है तथा ये

सचमुच मेरी आंतरिक जरूरत महसूस करते हैं। युवती भाव-विभोर हो गई। उसकी हताशा हर्षोल्लास में बदल गई। दोनों का विवाह हो गया। गौनर ने अपने निश्छल प्रेम से उसके चित्त का संपूर्ण विषाद धो दिया उसे याद ही न रहा कि उसके गर्भाशय मे कैंसर जैसा भयानक रोग है। वह तो आनंद और प्रसन्नता की दुनियाँ में जी रही थी। कुछ दिनों बाद युवती गर्भवती हो गई। डॉक्टरी जाँच करने पर उसके गर्भाशय में कैंसर के चिन्ह नहीं दिखे। प्रसव-काल आया और युवती ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया। जच्चा-बच्चा दोनों पूर्ण स्वस्थ तथा पति गौनर भी।

विषाद रोग के रोगियों-मनोविकारों से ग्रसित व्यक्तियों के लिए उपयुक्त उपचार यह है कि वे मनोबल समेटकर अपनी दुर्दशा के निमित्त जो स्वयं बने हुए हैं सोचें और अनुभव करें कि अपनी मानसिक धारा को साहसपूर्वक बदलने के प्रयास में वे निश्चित रूप से सफल हो सकते हैं। इस प्रकार से आशा और उत्साह भरा भविष्य बना सकने वाले स्वसंकेतों को अपना कर अपना रोग बहुत हद तक स्वयं ही दूर कर सकते हैं।

अन्य स्वजन सहयोगी यदि वस्तुतः उनके स्थाई उपचार का सही मार्ग ढूँढ़ना चाहते हैं तो उनकी परिस्थितियाँ बदलें और ऐसे वातावरण में रखें जहाँ वे अपनी बात खुलकर कह सकें और सम्मान सहानुभूति का सहारा मिलता अनुभव कर सकें। कुंठाएँ मनुष्य को विक्षिप्त या अर्ध-विक्षिप्त बनाती हैं। संतोष और उल्लास को पाकर इन गाँठों को खुलने में भी देर नहीं लगती।

मानसिक रोगों का प्रेमोपचार

विश्व विख्यात मनःशास्त्री टॉमस मैलोन ने पागलपन के कारण ढूँढ़ने वाले अनेकों शोध-संस्थानों का मार्गदर्शन किया है और उन्हें परीक्षणों के आधार पर किसी उपयुक्त निष्कर्षों तक पहुँचाने में सहायता की है। उनके अनुसंधानों के निष्कर्षों में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह पाया है मनुष्य दूसरों का प्यार पाना

चाहता है, पर वह उसे मिल नहीं पाता। इस अभाव से उसके अंतःक्षेत्र की गहरी परतों में निराशाजन्य उदासी छा जाती है। फलतः उसका चिंतन प्रवाह अपना सीधा रास्ता छोड़कर भटकावों में फँस जाता है। प्यार पाने की असफलता का कारण संभव है उस व्यक्ति के अपने ही दोष-दुर्गुणों में रहा हो, पर इससे क्या उसकी आकांक्षा तो अतृप्त ही रह गयी। वह यह समीक्षा कहाँ कर पाता है कि दोष अपना है या पराया। भोजन किसी भी कारण न मिले, पेट का विक्षोभ तो हर हालत में रहेगा ही। इसी प्रकार प्यार के अभाव में मनुष्य अपना मानसिक संतुलन धीरे-धीरे खोता चला जाता है और एक दिन स्थिति वह आ जाती है जिसमें उसे विक्षिप्त एवं अर्ध-विक्षिप्त के रूप में पाया जाता है।

जो पूर्ण विक्षिप्त हो चुके हैं उनकी बात दूसरी है, पर जो दूसरों के मन और व्यवहार का अंतर समझने में किसी सीमा तक समर्थ हैं, उनके रोग को साध्य माना जा सकता है। अधिक-से-अधिक यह समझा जा सकता है कि उपचार कष्ट साध्य है, पर असाध्य तो नहीं ही कहना चाहिए। ऐसे रोगियों का उपयुक्त उपचार यह है कि उन्हें उपेक्षा के वातावरण से निकाल कर स्नेह-सद्भाव का अनुभव करने दिया जाय जिनसे उनका वास्ता पड़ता है वे सभी उसे प्यार और सम्मान प्रदान करें। वैसा न करें जैसा कि आमतौर से पागलों के साथ किया जाता है। अटपटेपन पर खीझ आना स्वाभाविक है, पर हितैषियों को यह मानकर चलना चाहिए कि रोगी आखिर रोगी है और उसका अटपटा व्यवहार जान-बूझकर की गयी उद्धतता नहीं वरन् चिंतन तंत्र से गड़बड़ा जाने की विवशता भर है। ऐसी दशा में वह तिरस्कार एवं प्रताड़ना का नहीं, दया और दुलार का अधिकारी है।

प्यार की प्यास मानवी चेतना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है। पदार्थों के संग्रह इन्द्रियों की रसानुभूति के उपरांत तीसरी भूख स्नेह की है जो व्यवहार में सम्मान के रूप में देखी

जाती है। यश कामना उसी का रूप है। प्रतिष्ठा प्राप्त करते समय मनुष्य सोचता है कि यह सम्मान कर्त्ताओं द्वारा दिया गया स्नेह सद्भाव है। यों होता यह भ्रम ही है किंतु असली न मिलने पर नकली से भी बहुत करके काम चलाते रहा जाता है। स्नेह के साथ सम्मान रहेगा किन्तु सम्मान का प्रदर्शन सदा स्नेह युक्त ही हो यह आवश्यक नहीं। उसमें छद्म भी घुला रह सकता है। सम्मान और यश के लिए लालायित प्रायः सभी पाये जाते हैं और उसके लिए समय, श्रम एवं धन भी खर्च करते हैं। यश लालसा के पीछे वस्तुतः प्यार को उपलब्ध करने की आकांक्षा ही काम करती है। लोग बड़प्पन के प्रदर्शन में उसे खरीदने की विडंबना रचते रहते हैं।

पानी की प्यास से गला सूखता है और भूख से पेट इठता है। प्यार के अभाव में आदमी थकता ही नहीं टूटता भी है। एकाकीपन यों अन्य प्राणियों को भी सहन नहीं, पर मनुष्य के लिए तो वह न ढोया जा सकने वाला भार है। वह साथ रहना ही नहीं चाहता ऐसे साथी भी चाहता है जो उसके अंतस् को छूने, गुदगुदाने खड़ा रखने और उठाने में सहायता कर सकें। प्यार का अभाव अखरता तो धैर्यवानों को भी है, पर हल्कापन तो उसके कारण उखड़ ही जाता है। प्रायः आंतरिक उखड़ापन ही पगलाने की व्यथा बनकर सामने आता है। यों पागलपन के इसके अतिरिक्त भी और कितने ही कारण होते हैं।

इस प्रकार पगलाने वालों का सबसे बड़ा दोष यह होता है कि वे प्यार की प्रकृति को नहीं जानते और यह नहीं समझ पाते कि यह अपने भीतर से निकलने वाली आभा भर है जो जहाँ भी पड़ती है दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक चमक उत्पन्न करती और आकर्षक लगती है। अपना प्यार ही दूसरों में प्रतिबिंबित होता है। यदि उसमें कमी हो तो दूसरों का वास्तविक सद्भाव भी ठीक तरह समझ सकना संभव न हो सकेगा। इसके विपरीत अपनी प्रगाढ़ आत्मीयता होने पर साथियों का सामान्य शिष्टाचार भी गहरे दुलार की अनुभूति करता रहता है। बल्ब स्वयं जलता

है और अपने क्षेत्र को प्रकाशवान करता है। व्यक्ति का अपना प्यार ही है जो विकसित होने पर दूसरों में प्रेम प्रतिदान मिलने के रूप में विदित होता रहता है।

जो इस तथ्य को समझते हैं। वे पगलाने से बचे रहते हैं। चपेट में आते हैं तो अपना उपचार आप कर लेते हैं। दूसरों की प्रतीक्षा न करके अपनी ओर से सद्भाव बढ़ाते हैं और उसे साथियों में, संपर्क क्षेत्र में उसका प्रतिबिंब देखते हैं। मानसिक अवसाद का यह अति सरल किंतु अत्यंत कारगर स्वसंचालित उपचार है, पर दुर्भाग्य यह है कि इस तथ्य को कोई-कोई ही समझ पाते हैं और अपनी ओर न देखकर स्नेह, सद्व्यवहार एवं सम्मान के लिए दूसरों का मुख ताकते रहते हैं। न मिलने पर खीजते और दूसरों पर ही कृपणता, कृतघ्नता आदि का दोष लगाते हैं। सहयोग के अभाव में सांसारिक कामों में हानि पड़ने की बात सर्वविदित है। आंतरिक सद्भावों की उपलब्धि उससे भी बड़ी आवश्यकता है। इतने बड़े उपार्जन का यही सरल उपाय है कि अपनी ओर से प्यार का प्रकाश फेंककर दूसरों को प्रिय पात्र बना लिया जाए और अपने ही प्रेम प्रकाश का आलोक समीपवर्ती क्षेत्र में छाया देखा जाए।

मानसोपचार की कठिनाई यह होती है कि यह पगलाए हुए रोगियों को यह दार्शनिक तथ्य समझा सकने में सफल नहीं हो पाते, समझने में तथाकथित समझदार भी असफल रहते हैं। मानसिक रोगी पहले तो अपनी विपन्नता ही स्वीकार नहीं करता, भी है तो उसे दूसरों की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई मानता है। जब तथ्य को स्वीकार ही नहीं किया गया तो उसके परिवर्तन के लिए बताया गया उपाय भी किस तरह गले उतरेगा ? कदाचित् ही कोई मनोरोग चिकित्सक अपने रोगियों को यह समझा सकने में सफल हो पाते होंगे कि उन्हें अपने भीतर आशा का, उल्लास का, प्रेम का स्रोत उभारना चाहिए और अपने सूखे मनक्षेत्र को हरा-भरा कर लेना चाहिए। कितना दुर्भाग्य है कि दो वयस्क मस्तिष्क लाख प्रयत्न करने पर भी

उस तथ्य को समझने और समझाने में सफल नहीं होते, जिन पर कि उनकी प्रसन्नता और सफलता निर्भर है।

जो हो, उपचार तो करना ही ठहरा। ऐसी दशा में एक ही उपाय शेष रह जाता है कि विक्षिप्तता एवं अर्ध-विक्षिप्तता के रोगी से सहानुभूति रखने वाले सभी लोग अपना व्यवहार बदल लें। स्नेह, सहयोग और सम्मान का प्रदर्शन करें। आत्मीयजन होने के नाते यदि ऐसा सहज स्वाभाविक रूप से बन पड़े तो उनका अधिक प्रभाव पड़ेगा, पर यदि भीतर से वैसी उमंग न उठती हो तो भी प्रेम प्रदर्शन को कारगर उपचार मानकर उसके लिए आवश्यक प्रयास किया जाना चाहिए।

मानसोपचार में औषधियों का, विद्युत प्रयोगों का तथा अन्यान्य क्रिया-प्रक्रियाओं का भी महत्त्व है, पर उन सबके संयुक्त परिणाम से भी अधिक लाभदायक यह होता है कि पगलाये रोगी को स्नेह-दुलार के वातावरण में रहने का अनुभव होने लगे। उद्धत मनोरोगियों की आक्रामक गतिविधियों पर नियंत्रण करने एवं सामान्य शिष्टाचार खो बैठने पर प्रतिबंधित भी किया जाता है और वैसा करने से उसे क्या हानि उठानी पड़ेगी, इसका अनुभव भी कराना चाहिए। अन्यथा उद्धत आचरण बढ़ता ही जायगा। इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि मानसिक रोगों के रूप में जीवन की नाव में जो पानी घुसता है उसके प्रवेश द्वार को प्यार के अभाव की अनुभूति ही कहा जा सकता है। अवसाद को उत्साह में बदल देना ही मानसिक रोगों की कारगर चिकित्सा है। इसमें प्रेमोपचार को जितनी सफलता मिलती है उतनी और किसी प्रयोग को नहीं।

आज का मानव संघर्षों से विचलित हो रहा है। उसका मानसिक संतुलन इतना बिगड़ रहा है कि उसकी परिणति आत्महत्या, आत्मप्रताड़ना, दीनता, अपराध, पागलपन तथा हिंसा की घटनाओं के रूप में हो रही है। इन विभीषिकाओं की जड़ आत्म ज्ञान की कमी है। मनुष्य अपने को नहीं पहचानता। वह इनका कारण बाहर ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है। बाहर की

परिस्थितियों का प्रभाव मानव के मन पर पड़ता है। उसके अनुसार वह आचरण करता है। असफलता का कटु अनुभव अचेतन में जाता है, जो उसके जीने की कला को प्रभावित करता है। इन सब क्रियाओं का परिणाम ही वह सारा अप्रिय घटनाक्रम है जो आज के मनुष्य पर छा गया है और उसका संतुलन बिगाड़ रहा है।

जीवन बड़ा अमूल्य है। इसमें संसार का सौंदर्य भरा हुआ है। पर उसका आनंद तभी मिल सकता है जब जीवन जीने की कला को समझें। इसके अभाव में हम जरा-जरा-सी बातों पर विचलित होते रहते हैं। हरदम हम अपने विषय में सोचते रहेंगे। हरदम अपने विषय में सोचना चिंता का कारण बनता है। नींद न आना, भूख न लगना, व्यर्थ में झुँझलाना आदि क्रियाएँ मानसिक तनाव के लक्षण हैं। इससे मनुष्य खिन्नता और लाचारी का अनुभव करता है। हर स्वस्थ व्यक्ति मानसिक तनाव से रहित होता है।

मनुष्य केवल शरीर ही नहीं है। इससे परे उनका मन और आत्मा है, जो मनुष्य के शरीर को व्यक्तित्व का अंग बनाते हैं। शरीर और व्यक्तित्व का संतुलन उसके जीवन के लक्ष्य पर है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य उसे स्पष्ट करना चाहिए।

मनुष्य को अपने जीवन को सार्थक, तथ्यपूर्ण, लक्ष्ययुक्त और सप्रयोजन समझना चाहिए। उसे इस बात की शिक्षा बचपन से ही मिलनी चाहिए कि सार्थक-जीवन श्रेष्ठ कार्यों पर निर्भर करता है। इस अनुभूति से मानव अपने कार्यों में आनंद लेता रहेगा। उसका मानसिक संतुलन ठीक रहेगा। उसे कार्य करने में आनंद मिलेगा। लक्ष्य के अभाव में व्यक्ति उदासीन हो जाएगा। उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाएगा और किसी भी प्रकार की मानसिक विकृति का शिकार हो जाएगा। वियना के मनोचिकित्सक डॉ० फैंकल का मत है कि यदि मनुष्य ऐसा अनुभव करने लगे कि उसका जीवन निरर्थक है तो उसका मन स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकता। उसके अनुसार मानसिक

धरातल ही असंतुलन का कारण है उनकी चिकित्सा प्रणाली अर्थ बोध की चिकित्सा या 'लौगोथिरेपी' है। डॉ० फैंकल का कहना है कि जिसे अपने जीवन और कार्य के अर्थ का बोध न हो वह व्यक्ति स्वस्थ नहीं है।

डॉ० फैंकल के अनुसार आज का अधिकतर आदमी जीवन का अर्थ बोध नहीं जानता। वह नहीं जानता मैं क्यों जी रहा हूँ ? मेरा जीना, जीना भी है या नहीं। वह तो जीवन को ढो रहा है। जीवन उसके लिए आनंद नहीं मजबूरी है। उसका चिंतन आध्यात्मिक बन गया है। डॉ० फैंकल के अनुसार भोग तृप्ति तथा शक्ति संचय मानसिक स्थिरता नहीं प्रदान करते। मनुष्य के लिए जीवन के लक्ष्य और उनकी सिद्धि आवश्यक है। फैंकल की पद्धति के अनुसार मानसिक रोगी से प्रिय-अप्रिय सभी विषयों पर चर्चा करके उसे जीवन का अर्थ ढूँढ़ने की ओर चला देना आवश्यक है। ऐसा रोगी अपने अस्तित्व को समझेगा तो उसका मन स्फूर्ति से भर जायेगा। वह जीने की इच्छा करने लगेगा।

जैम्स लैग के अनुसार मनोचिकित्सक अपने रोगी को एक प्रकार से पागलपन ग्रस्त समझते हैं, जिससे उसका आत्म-विश्वास समाप्त हो गया है। पागलपन कठिन परिस्थितियों और समाज के अत्याचारों से बचने का एक अभिनय है। प्रारम्भ में मनुष्य झूँठ-मूँठ का पागल बनता है फिर वह स्वाभाविक रूप धारण कर लेता है। ऐसे व्यक्ति का आत्म सोया हुआ है। उसको सहानुभूति तथा संवेदनशील स्पर्श से जगाना है। चिकित्सक को रोगी के साथ गहरे उतरकर रोगी के अंदर सोये आत्मा तक पहुँचना है। रोगी में यह भाव आ जाय कि मैं चेतन तथा समर्थ हूँ। वह यह विश्वास करने लगे कि संसार की कोई कठिनाई ऐसी नहीं जिसका वह सफलता से सामना न कर यह विश्वास आते ही उसका मानसिक संतुलन लौट आयेगा।

आज का समाज और शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को स्वतंत्र चिंतन नहीं करने देते। मानव में 'हम' और 'वे' का अंतर समाज

ने उत्पन्न कर दिया। जिसने व्यक्ति का विवेक और व्यक्तित्व नष्ट कर दिया वह समूह का दास हो गया।

समाज में मनुष्य को स्वतंत्र रूप से चिंतन करने का अवसर नहीं दिया जाता। बँधी हुई व्यवस्था में व्यक्ति छटपटाता है। मनुष्य में उत्सुकता होती है, उसका जानने को मन करता है। रोके जाने पर विद्रोह करने की उसकी आतुरता बढ़ जाती है। मन को रोकना पर्याप्त नहीं, उसे दिशा मिलनी चाहिए, जिससे उसे आनंद मिले। मन आकर्षण की ओर झुकेगा। उस ओर से रोकने के बदले उसकी दिशा में परिवर्तन करना आवश्यक है। उसके लिए अधिक आकर्षण क्षेत्र तैयार किया जाना चाहिए।

जीवन भर कार्य करते रहना मन पर काबू पाना है, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। कार्य का रूप जीवन के लक्ष्य से प्राप्त होता है। जीवन के लक्ष्य मनुष्य को आत्म ज्ञान से प्राप्त होते हैं—यही अध्यात्म है। अपने को जानना उसके अनुसार आचरण करना ही अध्यात्म है। अधि + आत्म = आत्मा का अधिकार यही अध्यात्म है। आत्मा जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन का आधार है। यह मनुष्य के जीवन का लक्ष्य बताती है। जीवन का लक्ष्य न जानना तथा उस पर आचरण न कर पाना, मनुष्य की चिंता का कारण बनता है जिससे मनुष्य का मस्तिष्क सोचते-सोचते निष्क्रिय हो जाता है और चिड़चिड़ा हो जाता है। उसका आत्म-विश्वास समाप्त हो जाता है। विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

शारीरिक रोगों का आधार भी मानसिक होता है। सिर दर्द, पेट दर्द, उल्टी जैसे रोगों का कारण तो अधिकतर मानसिक होता है। दूसरे के रोगों को देखकर जानकर भी रोगी अपने अंदर ऐसे भाव ले आता है, मानो वही रोग उसे हो गया। इसका कारण बचपन से प्रारंभ होता है। बचपन की क्रियाएँ तुरंत प्रभाव नहीं डालतीं। वे अचेतन में बैठ जाती हैं। शक्ति का आविर्भाव

होने पर वे उभरकर चेतना स्तर पर आ जाती हैं। कभी-कभी ये पागलपन या असाध्य रोग का रूप धारण कर लेती हैं।

अपने प्रियजनों की मृत्यु से उसका अवचेतन प्रभावित हो जाता है, हृदय रोग इसकी प्रक्रिया में प्रकट है। आत्महत्या, मानसिक, अस्वच्छता की चरम परिणति है। स्वस्थ व्यक्ति ऐसा पग नहीं उठा सकता। आत्मरक्षा मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसलिए यदि किसी की जीने की इच्छा पर मरने की इच्छा विजय प्राप्त कर ले तो वह व्यक्ति मानसिक रूप से अत्यंत अस्वस्थ है।

पागलपन का मानसिक दौरा, विषण्णता और स्नायु दुर्बलता है। ये सब मानसिक अस्वस्थता का परिणाम है, जिनका प्रारंभ जीवन लक्ष्य को न जानने तथा उन पर समाज या परिस्थितियों के दबाव से आचरण न करने के कारण होता है। अतः मानव को, जीवन लक्ष्य को जानना तथा समाज द्वारा उसकी स्वीकृति सुविधा मिलना आवश्यक है। यही अध्यात्म का मूल विषय है। इसको अच्छी प्रकार समझकर ही मानव ठीक रहेगा। कार्यरत रहेगा तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने एवं होने वाली सर्वनाशी मनोविकृतियों से बच सकेगा।

● ●